कामन्दकीय नीतिसार – सर्ग २: विद्याविभाग, वर्णाश्रम एवं दण्ड-माहात्म्य

(Kamandakiya Nitisara – Chapter 2)



मूल ग्रंथकार (Author): आचार्य कामन्दक (*Ācārya Kāmandaka)*

व्याख्या एवं प्रस्तुति (Commentary & Presentation): *Indian Philosophy & Ethics*

लेखक / संपादक (Author / Editor): *Anand Singh Dhami*

विषय क्षेत्र (Subject Area): भारतीय नीतिशास्त्र, प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिंतन, नेतृत्व-दर्शन एवं नैतिक दर्शन
संक्षिप्त परिचय: *कामन्दकीय नीतिसार* भारतीय नीतिशास्त्र की परंपरा का एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है। **सर्ग २** में शासन की **चार विद्याओं**, **वर्णाश्रम-व्यवस्था** तथा **दण्ड-माहात्म्य** का विस्तृत विवेचन किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में **सभी ४४ श्लोकों** का **IAST लिप्यंतरण**, **शब्दार्थ**, **भावार्थ** तथा **आधुनिक संदर्भों** सहित विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

ऑनलाइन लेख: *https://indianphilosophyethics.blogspot.com/2026/07/kamandakiya-nitisara-chapter-2-governance.html*

परिचय एवं महत्त्व

एक कथा - राजा और ऋषि का संवाद कहानी कुछ इस प्रकार है... एक बार एक राजा ने अपने गुरु से पूछा - *"महाराज, मैं अपने राज्य को सुखी, समृद्ध और सुरक्षित कैसे बना सकता हूँ? क्या केवल सेना और कोष से राज्य चलता है?"* गुरु मुस्कुराए और बोले - *"हे राजन्, सेना और कोष तो मात्र अंग हैं। एक राज्य की स्थिरता उसके ज्ञान, उसकी नीति, उसकी अर्थ-व्यवस्था और उसके दण्ड-विधान पर टिकी होती है। जिस प्रकार एक रथ चार पहियों पर चलता है, उसी प्रकार एक राज्य चार स्तंभों पर - तर्क (आन्वीक्षिकी), नीति (त्रयी), अर्थ (वार्ता) और दण्ड (दण्डनीति) - पर टिका होता है।"* यही वह ज्ञान है जिसे आचार्य कामन्दक ने अपने ग्रंथ **'कामन्दकीय नीतिसार'** में संकलित किया।

कामन्दकीय नीतिसार आचार्य कामन्दक द्वारा रचित भारतीय राजनीति-दर्शन का प्रमुख ग्रंथ है, जो **२० सर्गों** और **लगभग १२०० श्लोकों** में विभक्त है। यह ग्रंथ कौटिल्य के **अर्थशास्त्र** की पद्य-रूप में संक्षिप्त प्रस्तुति है, जिसमें शासन-कला, राजनीति, अर्थव्यवस्था, समाज-संरचना और दण्ड-व्यवस्था का समग्र दर्शन प्रस्तुत किया गया है। आचार्य कामन्दक का मानना है कि किसी भी राज्य की स्थिरता केवल सैन्य शक्ति अथवा धन पर निर्भर नहीं होती, बल्कि **चार विद्याओं, कर्तव्यपरायण समाज और न्यायपूर्ण दण्ड-व्यवस्था** के संतुलित समन्वय से संभव होती है।

कामन्दकीय नीतिसार सर्ग २ में ४४ श्लोक हैं, जो तीन प्रकरणों में विभक्त हैं - **विद्याविभाग** (श्लोक १-१७), **वर्णाश्रम** (श्लोक १८-३५), **दण्डमाहात्म्य** (श्लोक ३६-४४)। यह अध्ययन **Kamandakiya Nitisara Chapter 2** के सभी श्लोकों की **IAST, शब्दार्थ, भावार्थ एवं समसामयिक परिप्रेक्ष्य** में व्याख्या प्रस्तुत करता है

त्वरित सारांश (Quick Summary)

प्रकरण	श्लोक	मूल संदेश
विद्याविभाग	१-१७	शासन चार स्तंभों-तर्क (आन्वीक्षिकी), नीति (त्रयी), अर्थ (वार्ता), दण्ड (दण्डनीति)-पर टिका है। दण्डनीति (Rule of Law) इन सबकी संरक्षक है।
वर्णाश्रम	१८-३५	समाज-संरचना-चार वर्ण (गुण-कर्म-आधारित) एवं चार आश्रम (शिक्षा, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास)। सार्वभौमिक-धर्म (अहिंसा, सत्य, दया, क्षमा) सबके लिए समान।
दण्डमाहात्म्य	३६-४४	दण्ड-अभाव में 'मात्स्य-न्याय' (अराजकता)। 'युक्त-दण्ड' (संतुलित) एवं 'अनुद्वेजन-दण्ड' (भयरहित अनुशासन) ही समृद्धि का मार्ग।

शासन-संरचना (आरेख)



विद्याविभागप्रकरणम् (श्लोक १-१७)

प्रकरण-परिचय: इस प्रकरण में आचार्य कामन्दक शासन की चार आधारभूत विद्याओं-**आन्वीक्षिकी** (तर्क-दर्शन), **त्रयी** (वैदिक-नीति), **वार्ता** (अर्थव्यवस्था) और **दण्डनीति** (शासन-विज्ञान)-का विवेचन करते हैं। इन्हें किसी भी सफल राज्य की बौद्धिक एवं प्रशासनिक नींव माना गया है। दण्डनीति को इन सभी विद्याओं की संरक्षक बताया गया है; इसके पतन पर अन्य सभी विद्याएँ व्यावहारिक रूप से निष्फल हो जाती हैं।

श्लोक १ – राजा की चार विद्याएँ

मूल संस्कृत श्लोक

आन्वीक्षिकीं त्रयीं वार्तां दण्डनीतिं च पार्थिवः ।

तद्विद्यैस्तत्क्रियोपेतैश्चिन्तयेद्विनयान्वितः ॥१॥

IAST (लिप्यंतरण)

ānvīkṣikīṃ trayīṃ vārtāṃ daṇḍanītiṃ ca pārthivaḥ ।

tadvidyaistatkriyopetaiś cintayed vinayānvitaḥ ॥1॥

शब्दार्थ (शब्द-कोश)

संस्कृत पद	**हिन्दी अर्थ**
आन्वीक्षिकीम्	तर्कशास्त्र / दर्शनशास्त्र (तार्किक चिन्तन)
त्रयीम्	वैदिक साहित्य / तीन वेदों पर आधारित नीति-शास्त्र
वार्ताम्	अर्थशास्त्र, कृषि, व्यापार एवं वाणिज्य-नीति
दण्डनीतिम्	शासन-विज्ञान, न्याय एवं दण्ड व्यवस्था
पार्थिवः	राजा / शासक
तद्विद्यैः	उन विद्याओं के विशेषज्ञ / ज्ञाता
तत्क्रियोपेतैः	व्यावहारिक अनुभव से युक्त विद्वान
चिन्तयेत्	मंत्रणा / विचार-विमर्श करे
विनयान्वितः	विनम्रता एवं नम्र स्वभाव से युक्त होकर

भावार्थ (सारांश)

राजा को **तर्क-दर्शन, वैदिक नीति, अर्थ-व्यवस्था और प्रशासन-विज्ञान** – इन चारों विद्याओं पर **विनम्रतापूर्वक** गहन विचार-विमर्श करना चाहिए। यह विचार-विमर्श केवल सैद्धांतिक विद्वानों तक सीमित नहीं होना चाहिए, अपितु **व्यावहारिक अनुभव** रखने वाले विशेषज्ञों एवं कर्मशील व्यक्तियों को भी इसमें शामिल करना चाहिए।

मूल संदेश (शासन-सूत्र)

शासन की सफलता **चार स्तंभों – तर्क, नीति, अर्थ और दण्ड** – पर टिकी हुई है। एक सशक्त शासन के लिए आवश्यक है कि निर्णय लेने से पूर्व इन चारों पहलुओं का तर्कसंगत, नीतिगत, आर्थिक एवं विधिक दृष्टि से मूल्यांकन किया जाए।

समसामयिक दृष्टिकोण (आधुनिक प्रासंगिकता)

आज के संदर्भ में इस श्लोक की तुलना **नीति आयोग (NITI Aayog)**, **थिंक टैंक (Think Tanks)** तथा विभिन्न **सलाहकार समितियों (Advisory Committees)** से की जा सकती है। आधुनिक लोकतंत्र में भी नीति-निर्माण तब अधिक प्रभावी होता है, जब उसमें शैक्षणिक विशेषज्ञों (Academia) के साथ-साथ **क्षेत्र-अनुभवी (Field Experts)** एवं उद्योग-व्यापार के प्रतिनिधियों को भी साथ लेकर विनम्रतापूर्वक चिन्तन-मन्थन किया जाता है।

श्लोक २ – शाश्वत विद्याएँ (चारों विद्याओं की सार्वभौमिकता)

मूल संस्कृत श्लोक

आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्च शाश्वती ।

विद्याश्चतस्र एवैता योगक्षेमाय देहिनाम् ॥२॥

IAST (लिप्यंतरण)

ānvīkṣikī trayī vārtā daṇḍanītiś ca śāśvatī /

vidyāś catasra evaitā yogakṣemāya dehinām //2//

शब्दार्थ (शब्द-कोश)

संस्कृत पद	हिन्दी अर्थ
आन्वीक्षिकी	तर्कशास्त्र / दार्शनिक विवेक
त्रयी	वैदिक साहित्य (तीनों वेदों पर आधारित धार्मिक-सामाजिक नीति)
वार्ता	अर्थ-व्यवस्था, कृषि, वाणिज्य एवं उद्योग-नीति
दण्डनीतिः	शासन-व्यवस्था, दण्ड विधान एवं न्याय-प्रणाली
शाश्वती	शाश्वत / कालातीत / सदैव प्रासंगिक
विद्याः	ज्ञान-शाखाएँ / विद्याएँ
चतस्रः	चार
एवैताः	ये ही
योगक्षेमाय	समृद्धि (योग) एवं सुरक्षा (क्षेम) के लिए
देहिनाम्	समस्त प्राणियों / शरीरधारियों के लिए

भावार्थ (सारांश)

तर्क, वैदिक नीति, अर्थ-व्यवस्था और दण्ड-शासन – ये चारों विद्याएँ **शाश्वत** हैं, अर्थात् समय, काल एवं परिस्थिति से परे सदैव उपयोगी एवं प्रासंगिक रहती हैं। इन चारों के समुचित ज्ञान एवं प्रयोग से ही **समस्त जीवमात्र का कल्याण, समृद्धि (योग) एवं आपत्तियों से रक्षा (क्षेम)** संभव हो सकती है। ये केवल राजा या शासक के लिए नहीं, बल्कि संपूर्ण समाज के उत्थान के लिए मौलिक हैं।

मूल संदेश (जीवन-सूत्र)

मानव जीवन के समग्र विकास के लिए ये चार विद्याएँ आधारभूत हैं –

- **तर्क** देता है विवेक,
- **नीति** देता है संस्कार व कर्तव्य-बोध,
- **अर्थ** प्रदान करता है भौतिक साधन,
- **दण्ड** प्रदान करता है सुरक्षा एवं व्यवस्था। इन चारों का संतुलन ही **'योगक्षेम'** अर्थात् **समृद्धि-सुरक्षा** का मूल मंत्र है।

समसामयिक दृष्टिकोण (आधुनिक प्रासंगिकता)

इस श्लोक की अवधारणा आज के **संयुक्त राष्ट्र के सतत विकास लक्ष्यों (SDGs – Sustainable Development Goals)** से गहराई से मेल खाती है। **'योगक्षेम'** ही आधुनिक कल्याणकारी राज्य की संकल्पना है:

- **गरीबी उन्मूलन, भूख-मुक्ति एवं अच्छा स्वास्थ्य** (SDG 1, 2, 3) – यह 'वार्ता' (अर्थ-नीति) का अंग है।
- **गुणवत्तापूर्ण शिक्षा एवं नवाचार** (SDG 4, 9) – यह 'त्रयी' एवं 'आन्वीक्षिकी' से जुड़ा है।
- **सुशासन, न्याय, शांति एवं सशक्त संस्थाएँ** (SDG 16) – यह 'दण्डनीति' का ही विस्तारित स्वरूप है।

इस प्रकार कौटिल्य द्वारा प्रतिपादित **'योगक्षेम'** की अवधारणा ही आज के वैश्विक विकास एजेंडे का आदिरूप है, जो मानव-केंद्रित, सतत एवं समग्र विकास की बात करता है।

श्लोक ३ – आन्वीक्षिकी : त्रयी का विभाग

मूल संस्कृत श्लोक

त्रयी वार्ता दण्डनीतिस्तिस्रो विद्या हि मानवाः ।

त्रय्या एव विभागोऽयं येयमान्वीक्षिकी मता ॥३॥

IAST (लिप्यंतरण)

trayī vārtā daṇḍanītis tisro vidyā hi mānavāḥ ।

trayyā eva vibhāgo 'yaṃ yeyam ānvīkṣikī matā ॥3॥

शब्दार्थ (शब्द-कोश)

संस्कृत पद	हिन्दी अर्थ

त्रयी	वैदिक नीति / तीन वेदों पर आधारित शास्त्र
वार्ता	अर्थशास्त्र, कृषि, व्यापार एवं वाणिज्य-नीति
दण्डनीतिः	शासन-विज्ञान, न्याय एवं दण्ड व्यवस्था
तिस्रः	तीन (संख्या में)
विद्याः	विद्याएँ / ज्ञान-शाखाएँ
मानवाः	मनुष्यों के लिए (उपयोगी / निर्दिष्ट)
त्रय्याः	त्रयी (वैदिक नीति) का
एव	ही (निश्चयार्थक)
विभागः	विभाग / अंग / भेद
अयम्	यह (आन्वीक्षिकी)
या इयम् (येयम्)	जो यह (तर्क-दर्शन)
आन्वीक्षिकी	तर्क-दर्शन / आलोचनात्मक चिन्तन
मता	मानी गई है / समझी गई है

भावार्थ (सारांश)

त्रयी (वैदिक नीति), वार्ता (अर्थ-व्यवस्था) और दण्डनीति (शासन-विज्ञान) – ये तीन ही मूल विद्याएँ मनुष्यों के लिए निर्धारित हैं। इन तीनों का **विभाग/अंग** ही **आन्वीक्षिकी (तर्क-दर्शन)** है। अर्थात तर्क-शास्त्र कोई पृथक् या स्वतंत्र विद्या नहीं है, बल्कि यह इन तीनों विद्याओं का एक **अभिन्न अंग** एवं **सहायक शास्त्र** है।

मूल संदेश (शासन-सूत्र)

तर्क (आन्वीक्षिकी) को स्वतन्त्र विद्या न मानकर उसे **सभी विद्याओं की आधारशिला** और **परिष्कार-साधन** माना गया है। बिना तार्किक विवेक के नीति, अर्थ और दण्ड – तीनों ही अधूरे एवं असंतुलित हो सकते हैं। अतः तर्कशक्ति का उपयोग प्रत्येक विद्या के अन्तर्गत होना चाहिए।

समसामयिक दृष्टिकोण (आधुनिक प्रासंगिकता)

आज के संदर्भ में **आन्वीक्षिकी** का तात्पर्य **Critical Thinking (आलोचनात्मक चिन्तन)** से है। आधुनिक शिक्षा-प्रणाली में Critical Thinking को किसी एक विषय के रूप में नहीं, बल्कि **हर विषय की नींव (Foundation)** माना जाता है। चाहे वह अर्थशास्त्र हो, राजनीति हो, विज्ञान हो या नीति-निर्माण – तर्क एवं विवेक के बिना कोई भी निर्णय पूर्ण नहीं माना जाता। इस प्रकार आन्वीक्षिकी का आधुनिक रूप ही **Critical Thinking** है।

श्लोक ४ – वार्ता-दण्डनीति की प्रधानता

मूल संस्कृत श्लोक

वार्ता च दण्डनीतिश्च द्वे विद्ये इत्यवस्थिते ।

लोकस्यार्थप्रधानत्वाच्छिष्याः सुरपुरोधसः ॥४॥

IAST (लिप्यंतरण)

vārtā ca daṇḍanītiś ca dve vidye ity avasthite ।

lokasyārthapradhānatvāc chiṣyāḥ surapurodhasaḥ ॥4॥

शब्दार्थ (शब्द-कोश)

संस्कृत पद	**हिन्दी अर्थ**
वार्ता	अर्थव्यवस्था, कृषि, वाणिज्य एवं विनिमय-नीति
दण्डनीतिः	प्रशासन-विज्ञान, न्याय, दण्ड-व्यवस्था एवं शासन-कला
च	तथा / और
द्वे	दो (संख्यावाचक)
विद्ये	विद्याएँ / शास्त्र (ज्ञान की शाखाएँ)
इति	इस प्रकार / यों
अवस्थिते	स्थापित हैं / स्वीकृत हैं
लोकस्य	समाज / प्रजा / जनता के लिए
अर्थप्रधानत्वात्	अर्थ (भौतिक संसाधन/धन-धान्य) की प्रधानता/मुख्यता के कारण
शिष्याः	शिष्य / यहाँ तात्पर्य- विशेषज्ञ / सलाहकार
सुरपुरोधसः	राजसभा में सर्वोच्च स्थान प्राप्त करने वाले (देवताओं के प्रधान पुरोहित के समान सम्मानित)

भावार्थ (सारांश)

राज्य-प्रशासन में **अर्थव्यवस्था (वार्ता)** और **प्रशासन-विज्ञान (दण्डनीति)** – ये दोनों ही विद्याएँ सर्वोच्च स्थान पर प्रतिष्ठित हैं। इसका कारण यह है कि **समाज की उन्नति और स्थिरता का आधार भौतिक संसाधन (अर्थ)** ही है। अतः इन दोनों विद्याओं के विशेषज्ञ राजसभा में सबसे प्रमुख एवं सम्माननीय पद पर आसीन होते हैं।

मूल संदेश (शासन-सूत्र)

बिना अर्थ-संसाधनों के नीति अधूरी है और बिना दण्ड-व्यवस्था (प्रशासन) के अर्थ-संसाधन असुरक्षित हैं। शासन की सफलता के लिए **अर्थ एवं दण्ड (न्याय/प्रशासन) का अटूट समन्वय** अनिवार्य है। ये ही दोनों स्तंभ राज्य को सशक्त एवं प्रजा को सुखी बनाते हैं।

समसामयिक दृष्टिकोण (आधुनिक प्रासंगिकता)

आधुनिक लोकतांत्रिक शासन-व्यवस्था में आज भी यह सिद्धान्त चरितार्थ होता दिखता है – किसी भी केन्द्र या राज्य सरकार में प्रधानमंत्री/मुख्यमंत्री के बाद **वित्त मंत्री (Finance Minister)** और **गृह मंत्री (Home Minister)** / **विधि मंत्री (Law Minister)** को ही सर्वोच्च वरीयता दी जाती है।

इसी प्रकार, नीति-निर्माण में **अर्थशास्त्रियों (Economists)** और **कानून-विशेषज्ञों (Legal Experts)** की राय को सर्वाधिक महत्व दिया जाता है। केंद्रीय बजट (अर्थ-नीति) और कानून-व्यवस्था (प्रशासन-नीति) ही किसी भी सरकार की सफलता की कसौटी माने जाते हैं – यही इस श्लोक की आधुनिक प्रासंगिकता है।

श्लोक ५ – औशनसी मत : एकैव दण्डनीति

मूल संस्कृत श्लोक

एकैव दण्डनीतिस्तु विद्येत्यौशनसी स्थितिः ।

तस्यां हि सर्वविद्यानामारम्भाः सम्प्रतिष्ठिताः ॥५॥

IAST (लिप्यंतरण)

ekaiva daṇḍanītis tu vidyety auśanasī sthitiḥ /

tasyāṃ hi sarvavidyānām ārambhāḥ sampratiṣṭhitāḥ //5//

शब्दार्थ (शब्द-कोश)

संस्कृत पद	**हिन्दी अर्थ**
एका एव	केवल एक ही (अद्वितीय)
दण्डनीतिः	दण्डनीति / शासन-व्यवस्था का विज्ञान
तु	तो (परन्तु / निश्चय ही)
विद्या	विद्या / ज्ञान-शाखा
इति	इस प्रकार / ऐसा
औशनसी	शुक्राचार्य-सम्बन्धी / औशनस परम्परा
स्थितिः	मत / सिद्धान्त / निश्चय
तस्याम्	उस (दण्डनीति) में
हि	क्योंकि / निस्संदेह
सर्वविद्यानाम्	समस्त विद्याओं / शास्त्रों के
आरम्भाः	व्यावहारिक प्रयोग / क्रियान्वयन
सम्प्रतिष्ठिताः	सुस्थापित / आधारित हैं

भावार्थ (सारांश)

शुक्राचार्य की परम्परा (औशनसी मत) के अनुसार, **केवल दण्डनीति ही सर्वोपरि विद्या** है। ऐसा इसलिए, क्योंकि संसार की **समस्त विद्याओं एवं शास्त्रों** का **व्यावहारिक क्रियान्वयन** तथा उनके लाभों की रक्षा इसी दण्डनीति (राज्य-शक्ति एवं न्याय-व्यवस्था) पर **आधारित** है। बिना दण्ड-व्यवस्था के ज्ञान-विज्ञान, कला, व्यापार आदि सभी अराजकता में विलीन हो जाते हैं।

मूल संदेश (शासन-सूत्र)

दण्डनीति केवल दमन का साधन नहीं, बल्कि **समग्र व्यवस्था की आधारशिला** है। यह वह केंद्रीय शक्ति है, जो सभी अन्य विद्याओं (कृषि, वाणिज्य, कला, दर्शन, धर्म) को सुरक्षा, स्थिरता एवं विकास का अवसर प्रदान करती है। शक्तिहीन राज्य में ज्ञान-विज्ञान भी असुरक्षित है।

समसामयिक दृष्टिकोण (आधुनिक प्रासंगिकता)

आधुनिक राजनीति-दर्शन में इस औशनसी मत की तुलना प्रायः पाश्चात्य विचारक **थॉमस हॉब्स (Thomas Hobbes)** के **'लेवियाथन (Leviathan)'** सिद्धान्त से की जाती है। हॉब्स भी कहते हैं कि बिना एक सर्वोच्च, निरंकुश राज्य-शक्ति (Commonwealth) के मानव-जीवन "एकाकी, दरिद्र, क्रूर एवं अल्पायु" हो जाता है।

वर्तमान संदर्भ में यह श्लोक **प्रभावी न्यायपालिका, सशक्त पुलिस-प्रशासन एवं सुदृढ़ विधि-व्यवस्था** की अनिवार्यता को रेखांकित करता है। चाहे वह आर्थिक नीति हो, शिक्षा-व्यवस्था हो या डिजिटल इन्फ्रास्ट्रक्चर – इन सबकी सुरक्षा एवं सुचारु संचालन अंततः एक सक्षम एवं न्यायोचित दण्ड-व्यवस्था (कानून के शासन) पर ही निर्भर करता है।

श्लोक ६ – गुरु-दर्शन : चारों विद्याएँ

मूल संस्कृत श्लोक

विद्याश्चतस्र एवैता इति नो गुरुदर्शनम् ।

पृथक्पृथक्प्रसिद्ध्यर्थं यासु लोको व्यवस्थितः ॥६॥

IAST (लिप्यंतरण)

vidyāś catasra evaitā iti no gurudarśanam ।

pṛthak pṛthak prasiddhyartham yāsu loko vyavasthitaḥ ॥6॥

शब्दार्थ (शब्द-कोश)

संस्कृत पद	**हिन्दी अर्थ**
विद्याः	विद्याएँ / ज्ञान-शाखाएँ
चतस्रः	चार (संख्या में)
एव	ही (निश्चयार्थक)
एताः	ये (सभी)
इति	ऐसा (कहकर / निर्देश करते हुए)

नः	हमारा (गुरु-परम्परा के अनुसार)
गुरुदर्शनम्	गुरु-परम्परा का मत / आचार्यों का सिद्धान्त
पृथक्पृथक्	अलग-अलग / भिन्न-भिन्न
प्रसिद्ध्यर्थम्	ज्ञान-प्रसार एवं व्यावहारिक प्रयोग के लिए
यासु	जिन (विद्याओं) में
लोकः	समाज / संसार
व्यवस्थितः	सुव्यवस्थित / क्रमबद्ध रूप से स्थापित है

भावार्थ (सारांश)

गुरु-परम्परा (आचार्य बृहस्पति एवं चाणक्य आदि विद्वानों का मत) इन **चारों विद्याओं** को ही समग्र ज्ञान-संरचना मानती है। इन विद्याओं का **अलग-अलग** अध्ययन, ज्ञान-वर्धन एवं व्यावहारिक उपयोग ही समाज को **सुव्यवस्थित, अनुशासित एवं समृद्ध** बनाए रखने का आधार है।

मूल संदेश (शासन-सूत्र)

शासन और समाज-व्यवस्था की स्थिरता **चार विद्याओं** (तर्क, वेद-नीति, अर्थशास्त्र, दण्डनीति) के सामंजस्यपूर्ण एवं पृथक-पृथक प्रयोग में निहित है। कोई भी एक विद्या अकेले समाज को नहीं चला सकती; इन चारों का समन्वय ही **सुशासन** की कुंजी है।

समसामयिक दृष्टिकोण (आधुनिक प्रासंगिकता)

आधुनिक वैश्विक परिप्रेक्ष्य में इस श्लोक की तुलना **संयुक्त राष्ट्र (UN)** की **चतुष्पदी संरचना** से सहज ही की जा सकती है:

1. **सुरक्षा परिषद (UNSC)** – दण्डनीति (शासन एवं सुरक्षा)
2. **ECOSOC (आर्थिक एवं सामाजिक परिषद)** – वार्ता (अर्थशास्त्र एवं वाणिज्य)
3. **मानवाधिकार परिषद (UNHRC)** – त्रयी (नीति एवं मानवीय मूल्य)
4. **UNESCO (शिक्षा, विज्ञान एवं संस्कृति)** – आन्वीक्षिकी (तर्क, दर्शन एवं बौद्धिक विकास)

इन चारों स्तंभों के पृथक-पृथक एवं समन्वित प्रयोग से ही वैश्विक समाज व्यवस्थित और संतुलित रहता है – यही इस श्लोक की **सार्वभौमिक एवं शाश्वत** प्रासंगिकता है।

श्लोक ७ – प्रत्येक विद्या का कार्य-क्षेत्र

मूल संस्कृत श्लोक

आन्वीक्षिक्यात्मविज्ञानं धर्माधर्मौ त्रयीस्थितौ ।

अर्थानर्थौ तु वार्तायां दण्डनीत्यां नयेतरौ ॥७॥

IAST (लिप्यंतरण)

ānvīkṣiky ātmavijñānaṃ dharmādharmau trayīsthitau ।

arthānarthau tu vārtāyāṃ daṇḍanītyāṃ nayetarau ॥7॥

शब्दार्थ (शब्द-कोश)

संस्कृत पद	हिन्दी अर्थ
आन्वीक्षिकी	तर्क-दर्शनशास्त्र / आलोचनात्मक चिन्तन
आत्मविज्ञानम्	आत्म-तत्त्व का ज्ञान, चेतना एवं अस्तित्व का बोध
धर्माधर्मौ	धर्म (उचित/न्याय) एवं अधर्म (अनुचित/अन्याय)
त्रयीस्थितौ	त्रयी (वेदत्रयी) के अंतर्गत स्थित नीति-शास्त्र
अर्थानर्थौ	अर्थ (लाभ, समृद्धि) एवं अनर्थ (हानि, संकट)
वार्तायाम्	अर्थव्यवस्था, कृषि, वाणिज्य एवं उद्योग-धंधों में
दण्डनीत्याम्	शासन-विज्ञान, न्याय एवं दण्ड व्यवस्था में
नयेतरौ	सुनय (उत्तम नीति/कूटनीति) एवं कुनय (दुष्ट नीति/कुशासन)

भावार्थ (सारांश)

इस श्लोक में चारों विद्याओं के **विशिष्ट कार्य-क्षेत्र** स्पष्ट किए गए हैं –

- **आन्वीक्षिकी (तर्क-दर्शन)** का विषय है – **आत्म-ज्ञान** (चिन्तन, तत्त्व-मीमांसा एवं चेतना)।
- **त्रयी (वैदिक नीति)** का विषय है – **धर्म-अधर्म** (कर्तव्य, नैतिकता एवं ऋत-सत्य)।
- **वार्ता (अर्थव्यवस्था)** का विषय है – **अर्थ-अनर्थ** (लाभ-हानि, उत्पादन, वितरण एवं वाणिज्य)।
- **दण्डनीति (शासन-विज्ञान)** का विषय है – **सुनय-कुनय** (उत्तम शासन-प्रणाली एवं कुशासन की पहचान)।

इस प्रकार प्रत्येक विद्या का अपना **पृथक एवं परिभाषित विषय-क्षेत्र** है, और राजा को चाहिए कि वह किसी भी समस्या का समाधान करते समय इन विषयों के अनुसार ही विशेषज्ञों से मंत्रणा करे।

मूल संदेश (शासन-सूत्र)

ज्ञान एकाकार नहीं, बल्कि **बहु-आयामी** होता है। प्रत्येक विद्या की अपनी **सीमा और उपयोगिता** है। एक कुशल शासक का कौशल इसी में है कि वह जाने कि किस प्रश्न के लिए किस शास्त्र का सहारा लेना है – दार्शनिक प्रश्नों के लिए तर्क, नैतिक प्रश्नों के लिए वेद-नीति, आर्थिक प्रश्नों के लिए अर्थशास्त्र और प्रशासनिक प्रश्नों के लिए दण्डनीति।

समसामयिक दृष्टिकोण (आधुनिक प्रासंगिकता)

आधुनिक उच्च-शिक्षा की संरचना इस प्राचीन वर्गीकरण का **प्रत्यक्ष प्रतिबिम्ब** है –

- **आन्वीक्षिकी** → आधुनिक **दर्शनशास्त्र (Philosophy)** एवं **तर्कशास्त्र (Logic)** विभाग।

- **त्रयी → नीतिशास्त्र (Ethics)** एवं **धर्म-दर्शन (Religious Studies)** विभाग।
- **वार्ता → अर्थशास्त्र (Economics)**, **वाणिज्य (Commerce)** एवं **व्यवसाय-प्रबंधन (Business Management)**।
- **दण्डनीति → राजनीतिशास्त्र (Political Science)**, **लोक-प्रशासन (Public Administration)** एवं **विधि (Law)** विभाग।

इसके अतिरिक्त, आज की नीति-निर्माण प्रक्रिया में भी यह सिद्धांत उतना ही प्रासंगिक है कि **आर्थिक नीति** आर्थिक विशेषज्ञों से, **कूटनीति** राजनीति-वैज्ञानिकों से, और **नैतिक दुविधाएँ** दार्शनिकों एवं नीतिशास्त्रियों से सलाह लेकर ही बनाई जानी चाहिए। गलत विषय का गलत विशेषज्ञ से मिलान शासन की सबसे बड़ी भूल होती है – यही इस श्लोक की सर्वोच्च शिक्षा है।

श्लोक ८ – दण्ड-विप्लव में सब असत्य

मूल संस्कृत श्लोक

आन्वीक्षिकीत्रयीवार्ताः सतीर्विद्याः प्रचक्षते ।

सत्योऽपि हि न सत्यास्ता दण्डनीतेस्तु विप्लवे ॥८॥

IAST (लिप्यंतरण)

ānvīkṣikī trayī vārtāḥ satīr vidyāḥ pracakṣate |

satyo 'pi hi na satyāstā daṇḍanītes tu viplave ||8||

शब्दार्थ (शब्द-कोश)

संस्कृत पद	**हिन्दी अर्थ**
आन्वीक्षिकी	तर्क-दर्शनशास्त्र / आलोचनात्मक चिन्तन
त्रयी	वैदिक नीति-शास्त्र / तीन वेदों पर आधारित विधि-व्यवस्था
वार्ताः	अर्थव्यवस्था, कृषि, वाणिज्य एवं उद्योग-धंधे
सतीः	सत्य, यथार्थ एवं प्रामाणिक रूप में
विद्याः	विद्याएँ / ज्ञान-शास्त्र
प्रचक्षते	कही जाती हैं / मानी जाती हैं
सत्यः अपि	सत्य होते हुए भी / यद्यपि सत्य हैं
न सत्याः	सत्य नहीं हैं / व्यर्थ हो जाती हैं
ताः	वे (तीनों विद्याएँ)
दण्डनीतेः	दण्डनीति / शासन-व्यवस्था के

विप्लवे	पतन, विनाश, उच्छृंखलता अथवा विप्लव की स्थिति में

भावार्थ (सारांश)

सामान्यतः **आन्वीक्षिकी (तर्क), त्रयी (नीति) और वार्ता (अर्थ)** — ये तीनों विद्याएँ **सत्य एवं प्रामाणिक** मानी जाती हैं। किन्तु जब **दण्डनीति (शासन-व्यवस्था) का पतन** हो जाता है, तो ये तीनों ही विद्याएँ अपना सत्य एवं व्यावहारिक महत्त्व खो बैठती हैं। दूसरे शब्दों में, शासन-व्यवस्था के अभाव में कोई भी दार्शनिक सत्य, नैतिक नीति अथवा आर्थिक योजना व्यवहार में सार्थक नहीं रह पाती।

मूल संदेश (शासन-सूत्र)

इस श्लोक का मूल सिद्धान्त यह है कि **दण्डनीति ही समस्त विद्याओं की संरक्षिका है**। यदि शासन-तंत्र निर्बल, भ्रष्ट अथवा ध्वस्त हो जाए, तो —

- तर्क-दर्शन (आन्वीक्षिकी) अट्टहास एवं निरर्थक वाग्जाल मात्र रह जाता है,
- वैदिक नीति (त्रयी) अनैतिकता के आगे असहाय हो जाती है,
- अर्थ-व्यवस्था (वार्ता) लूट-पाट एवं अराजकता में विलीन हो जाती है।

इसलिए कहा गया है — **'दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वाः'** अर्थात दण्ड ही सबका शासक है। बिना दण्डनीति के न तो सत्य टिकता है, न धर्म, और न ही अर्थ।

समसामयिक दृष्टिकोण (आधुनिक प्रासंगिकता)

आज के परिप्रेक्ष्य में इस सिद्धान्त की सच्चाई **'असफल राज्यों' (Failed States)** के उदाहरणों में स्पष्ट दिखाई देती है -

- **सोमालिया, सूडान, अफ़ग़ानिस्तान** जैसे देशों में जब केन्द्रीय सत्ता एवं न्याय-व्यवस्था ध्वस्त होती है, तो वहाँ की **शिक्षा-प्रणाली** (आन्वीक्षिकी), **नैतिक-सामाजिक मूल्य** (त्रयी) और **आर्थिक गतिविधियाँ** (वार्ता) सब चरमरा जाती हैं।
- विश्व बैंक एवं संयुक्त राष्ट्र की रिपोर्टों के अनुसार, असफल राज्यों में सबसे पहले **निवेश, व्यापार एवं बौद्धिक विकास** ठप्प हो जाता है — जो इस श्लोक की आधुनिक व्याख्या है।

इसी प्रकार, कोविड-काल में भी जिन देशों की **प्रशासनिक व्यवस्था** मज़बूत थी, वहाँ शिक्षा, स्वास्थ्य एवं अर्थव्यवस्था संभल पाई; जहाँ शासन-तंत्र लड़खड़ाया, वहाँ सब कुछ अव्यवस्थित हो गया। यह सिद्ध करता है कि **चाहे प्राचीन भारत हो या आधुनिक विश्व, दण्ड-व्यवस्था का पतन ही समस्त व्यवस्थाओं का पतन है** — यही इस श्लोक की कालजयी शिक्षा है।

श्लोक ९ – दण्ड-सम्यक्-स्थिति में सब सम्यक्

मूल संस्कृत श्लोक

दण्डनीतिर्यदा सम्यङ्नेतारमधितिष्ठति ।

तदा विद्याविदः शेषा विद्याः सम्यगुपासते ॥९॥

IAST (लिप्यंतरण)

daṇḍanītir yadā samyaṅ netāram adhitiṣṭhati ।

tadā vidyāvidaḥ śeṣā vidyāḥ samyag upāsate ॥9॥

शब्दार्थ (शब्द-कोश)

संस्कृत पद	**हिन्दी अर्थ**
दण्डनीतिः	दण्डनीति / शासन-विज्ञान / न्याय-व्यवस्था
यदा	जब
सम्यक्	सम्यक् रूप से / उचित एवं पूर्ण रूप से
नेतारम्	राजा / शासक / नेता को
अधितिष्ठति	अपने अधीन कर लेती है / नियंत्रित करती है
तदा	तब / उस समय
विद्याविदः	विद्याओं के ज्ञाता / विशेषज्ञ
शेषाः	शेष (अन्य) तीनों
विद्याः	विद्याएँ (आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता)
सम्यक्	सम्यक् रूप से / भली-भाँति
उपासते	फलित होती हैं / सफलतापूर्वक सेवित व पोषित होती हैं

भावार्थ (सारांश)

जब **दण्डनीति** (शासन-व्यवस्था एवं विधि-विज्ञान) स्वयं **शासक को भी अपने अधीन** कर लेती है, अर्थात् जब राजा भी कानून के प्रति आबद्ध होता है, तभी शेष तीनों विद्याएँ – **आन्वीक्षिकी (तर्क), त्रयी (नीति) और वार्ता (अर्थ)** – अपने पूर्ण स्वरूप में फलित एवं सार्थक हो पाती हैं।

इसका तात्पर्य यह है कि बिना विधि-व्यवस्था के सर्वोच्च शासन-सिद्धांत के, अन्य सभी ज्ञान-विज्ञान एवं कल्याणकारी नीतियाँ निष्फल हो जाती हैं।

मूल संदेश (शासन-सूत्र)

विधि की सर्वोच्चता (Rule of Law) ही समृद्धि की आधारशिला है। यदि कानून और शासन-व्यवस्था स्वयं शासक से ऊपर नहीं होगी, तो चाहे अर्थ-व्यवस्था कितनी भी मजबूत हो, नीतियाँ कितनी भी उदार हों, या तर्क-शास्त्र कितना भी परिष्कृत हो – सब व्यर्थ है। कुशासन की छाया में कोई भी विद्या फल-फूल नहीं सकती।

समसामयिक दृष्टिकोण (आधुनिक प्रासंगिकता)

आज के संदर्भ में इस श्लोक की सीधी प्रतिध्वनि **'संविधान की सर्वोच्चता' (Constitutional Supremacy)** के सिद्धांत में सुनाई देती है:

- **प्रधानमंत्री**, **मुख्यमंत्री**, **न्यायाधीश** – कोई भी, चाहे उसका पद कितना भी ऊँचा क्यों न हो, **संविधान एवं कानून के अधीन** है।
- यही वह **'दण्ड-सम्यक्-स्थिति'** है। जब तक शासक (कार्यपालिका) और न्यायपालिका कानून की सीमाओं में बँधी रहती है, तब तक ही लोकतंत्र, मानवाधिकार, आर्थिक विकास एवं सामाजिक न्याय – ये चारों 'विद्याएँ' – सार्थक हो पाती हैं।
- यदि कभी कानून को दरकिनार करके शासन चलता है (जैसे कि तानाशाही या अराजकता में), तो शेष सभी नीतियाँ, योजनाएँ और शैक्षणिक उपलब्धियाँ **अपना मूल अर्थ खो बैठती हैं**। अतः 'दण्डनीति' ही वह केंद्रीय अक्ष है, जिसके इर्द-गिर्द शेष समस्त ज्ञान-राशि परिक्रमा करती है।

श्लोक १० – वर्णाश्रम का विद्याओं में प्रतिष्ठान

मूल संस्कृत श्लोक

वर्णाश्चैवाश्रमाश्चैव विद्यास्वासु प्रतिष्ठिताः ।

रक्षेत्ता रक्षणात्तासां तद्धर्मस्यांशभाङ्नृपः ॥१०॥

IAST (लिप्यंतरण)

varṇāś caivāśramāś caiva vidyāsv āsu pratiṣṭhitāḥ /

rakṣet tā rakṣaṇāt tāsāṃ tad dharmasyāṃśabhāṅ nṛpaḥ //10//

शब्दार्थ (शब्द-कोश)

संस्कृत पद	**हिन्दी अर्थ**
वर्णाः	वर्ण व्यवस्था (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र – गुण-कर्म आधारित)
आश्रमाः	आश्रम व्यवस्था (ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ, संन्यास)
विद्यासु	इन चारों विद्याओं (आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता, दण्डनीति) में
प्रतिष्ठिताः	प्रतिष्ठित / सुव्यवस्थित / आधारित हैं
रक्षेत्	(राजा) रक्षा करे, संरक्षण प्रदान करे
रक्षणात्	रक्षा-कर्तव्य के पालन के कारण / फलस्वरूप
तासाम्	उन (वर्ण-आश्रम व्यवस्था) की
धर्मस्य	समग्र धर्म-व्यवस्था (न्याय, कर्तव्य एवं सामाजिक संतुलन) का
अंशभाक्	अंशभागी / अधिकारी / सहभागी
नृपः	राजा / शासक

भावार्थ (सारांश)

वर्णाश्रम-व्यवस्था (समाज की संरचना एवं जीवन-क्रम) इन्हीं चारों विद्याओं – तर्क-दर्शन, वैदिक नीति, अर्थशास्त्र एवं दण्ड-विज्ञान – में सुव्यवस्थित रूप से **प्रतिष्ठित** है। राजा का परम कर्तव्य है कि वह इस सम्पूर्ण व्यवस्था की **रक्षा** करे, क्योंकि इस कर्तव्य-पालन के आधार पर ही वह राजा उस धर्म (सामाजिक-नैतिक व्यवस्था) का **अधिकारी एवं भागीदार (अंशभाक्)** बनता है।

मूल संदेश (शासन-सूत्र)

शासक का **अधिकार (Authority)** उसके **कर्तव्य-पालन (Duty)** से उत्पन्न होता है, न कि केवल पद, बल या वंश-परम्परा से। सत्ता का **नैतिक आधार** यह है कि शासक समाज के उन स्तंभों (व्यवस्थाओं) की रक्षा करे, जिन पर सम्पूर्ण राष्ट्र-जीवन टिका है। जब तक राजा इनकी रक्षा नहीं करता, तब तक उसकी सत्ता का कोई वैधानिक या नैतिक अस्तित्व नहीं है।

समसामयिक दृष्टिकोण (आधुनिक प्रासंगिकता)

आधुनिक **सामाजिक अनुबंध (Social Contract)** के सिद्धांतों की यह अत्यंत प्रासंगिक प्राचीन अभिव्यक्ति है। लोकतांत्रिक व्यवस्था में सरकार को कर-संग्रह (Taxation) एवं शासन-सत्ता तभी प्राप्त होती है, जब वह नागरिकों के जीवन, स्वतंत्रता एवं सम्पत्ति की रक्षा करती है – **"No taxation without representation"** अथवा आधुनिक शब्दों में ***"No authority without protection"***।

इस श्लोक का यही मूल है – राजा (सरकार) का **कर-अधिकार एवं शासनाधिकार** उसके **रक्षण-कर्तव्य** पर टिका है। जिस प्रकार एक संरक्षक (Trustee) अपने पद का अधिकारी केवल तब तक रहता है जब तक वह अपने उत्तरदायित्वों का निर्वहन करता है, उसी प्रकार शासक का वैधानिक अधिकार उसकी नीतियों, न्याय-व्यवस्था तथा सामाजिक सुरक्षा-व्यवस्था के सफल संचालन से ही अर्जित होता है।

श्लोक ११ – आन्वीक्षिकी : आत्म-विद्या

मूल संस्कृत श्लोक

आन्वीक्षिक्यात्मविद्या स्यादीक्षणात्सुखदुःखयोः ।

ईक्षमाणस्तया तत्त्वं हर्षशोकौ व्युदस्यति ॥११॥

IAST (लिप्यंतरण)

ānvīkṣiky ātmavidyā syād īkṣaṇāt sukhaduḥkhayoḥ |

īkṣamāṇas tayā tattvaṃ harṣaśokau vyudasyati ||11||

शब्दार्थ (शब्द-कोश)

संस्कृत पद	**हिन्दी अर्थ**
आन्वीक्षिकी	तर्क-दर्शन / आलोचनात्मक चिन्तन की विद्या
आत्मविद्या	आत्म-ज्ञान / स्वयं को जानने का शास्त्र
स्यात्	है / होती है
ईक्षणात्	परीक्षण / गहन अवलोकन करने के कारण
सुखदुःखयोः	सुख और दुःख के (मूल कारणों का)
ईक्षमाणः	परीक्षण / मनन करने वाला व्यक्ति
तया	उस (आन्वीक्षिकी-विद्या) के द्वारा
तत्त्वम्	वास्तविक तत्त्व-ज्ञान / सत्य का बोध

हर्षशोकौ	हर्ष (अत्यधिक उल्लास) और शोक (दुःख/विषाद) को
व्युदस्यति	पूर्णतः त्याग / नष्ट कर देता है

भावार्थ (सारांश)

आन्वीक्षिकी अर्थात तर्क-दर्शन ही **आत्म-विद्या** है। इस विद्या का स्वरूप सुख-दुःख के मूल कारणों का **गहन परीक्षण** करना है। जो मनुष्य इस विद्या के द्वारा निरंतर चिन्तन-मनन करता है, वह **तत्त्व-ज्ञान** को प्राप्त हो जाता है – परिणामस्वरूप वह हर्ष (अत्यधिक उत्साह/आवेग) एवं शोक (अत्यधिक विषाद/निराशा) – इन दोनों चरम भावनात्मक अवस्थाओं से पूर्णतः मुक्त हो जाता है।

मूल संदेश (जीवन-सूत्र)

आत्म-विद्या का सर्वोच्च लक्ष्य केवल सैद्धांतिक ज्ञान नहीं, अपितु **भावनात्मक संतुलन** प्राप्त करना है। जब मनुष्य अपनी ही सुख-दुःख की अनुभूतियों का निष्पक्ष परीक्षण करना सीख जाता है, तो वह सुख के आवेश में और दुःख के दबाव में भी विवेक नहीं खोता। **तत्त्व-ज्ञान** ही वह कुंजी है जो मनुष्य को मानसिक द्वंद्वों से मुक्त करती है और उसे स्थितप्रज्ञ (सम-बुद्धि) बना देती है।

समसामयिक दृष्टिकोण (आधुनिक प्रासंगिकता)

आज के मानसिक स्वास्थ्य एवं मनोविज्ञान के क्षेत्र में प्रचलित अनेक चिकित्सा-पद्धतियाँ इस श्लोक के सिद्धांत को ही विभिन्न नामों से प्रतिपादित करती हैं –

- **स्टोइसिज्म (Stoicism)** – जो सुख-दुःख के प्रति उदासीनता एवं विवेकपूर्ण स्वीकृति सिखाता है।
- **माइंडफुलनेस (Mindfulness)** – जो वर्तमान क्षण में अपनी भावनाओं का बिना किसी आसक्ति के अवलोकन करना सिखाता है।
- **संज्ञानात्मक व्यवहार थेरेपी (CBT – Cognitive Behavioral Therapy)** – जो विचारों के परीक्षण (ईक्षण) द्वारा नकारात्मक भावनाओं (हर्ष-शोक) को तर्कसंगत ढंग से बदलने पर केंद्रित है।

इस प्रकार, आन्वीक्षिकी का यह सिद्धांत आज भी **आत्म-चिंतन एवं भावनात्मक बुद्धिमत्ता (Emotional Intelligence)** का आधारभूत शास्त्र है। यह सिखाता है कि सुख-दुःख का स्वामी बाहरी परिस्थितियाँ नहीं, बल्कि उनके प्रति हमारी **दृष्टि (अवलोकन-क्षमता)** है।

श्लोक १२ – त्रयी : इहलोक-परलोक

मूल संस्कृत श्लोक

ऋग्यजुःसामनामानस्त्रयो वेदास्त्रयी स्मृता ।

उभौ लोकाववाप्नोति त्रय्यां तिष्ठन्यथाविधि ॥१२॥

IAST (लिप्यंतरण)

ṛgyajuḥsāmanāmānas trayo vedās trayī smṛtā ।

ubhau lokāv avāpnoti trayāṃ tiṣṭhan yathāvidhi ॥12॥

शब्दार्थ (शब्द-कोश)

संस्कृत पद	हिन्दी अर्थ
ऋक्	ऋग्वेद (स्तुतियों एवं मन्त्रों का वेद)
यजुः	यजुर्वेद (कर्मकाण्ड एवं यज्ञ-विधियों का वेद)
साम	सामवेद (गायन एवं संगीत-प्रधान मन्त्रों का वेद)
त्रयः	तीनों
वेदाः	वेद (आप्तश्रुति, ज्ञान-स्रोत)
त्रयी	ये तीनों वेद मिलकर 'त्रयी' कहलाते हैं
स्मृता	कही जाती हैं / विख्यात हैं
उभौ	दोनों
लोकौ	लोक (संसार/जगत) – इहलोक एवं परलोक
अवाप्नोति	प्राप्त करता है / उपलब्ध करता है
त्रय्याम्	त्रयी (तीनों वेदों) में
तिष्ठन्	स्थित रहकर / आचरण करते हुए
यथाविधि	विधान-अनुसार / विधिपूर्वक

भावार्थ (सारांश)

ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद – ये तीनों वेद ही 'त्रयी' कहलाते हैं। जो मनुष्य इन तीनों वेदों के विधानों का **यथाविधि आचरण** करता है, वह **इहलोक** (सांसारिक जीवन) और **परलोक** (आध्यात्मिक एवं पारलौकिक स्थिति) – दोनों को साध लेता है। अर्थात् वैदिक जीवन-पद्धति केवल मोक्ष-मार्ग नहीं, वरन् इस जीवन की समृद्धि, व्यवस्था एवं कर्तव्य-पालन का भी सम्यक् मार्गदर्शन करती है।

मूल संदेश (शासन-सूत्र)

वेद-त्रयी का अनुसरण **भौतिक एवं आध्यात्मिक – दोनों ही लोकों के समुचित पोषण** का साधन है। इहलोक की समृद्धि (धन, अन्न, स्वास्थ्य, सुशासन) और परलोक की मुक्ति (सत्कर्म, इन्द्रिय-निग्रह, यज्ञ-संस्कार) परस्पर विरोधी नहीं, बल्कि पूरक हैं। शासक को अपनी नीतियाँ ऐसी बनानी चाहिए कि वे जनता के **सांसारिक कल्याण** के साथ-साथ उनके **सांस्कृतिक एवं नैतिक उत्थान** का भी पथ प्रशस्त करें।

समसामयिक दृष्टिकोण (आधुनिक प्रासंगिकता)

इस श्लोक का आधुनिक समाजशास्त्र एवं अर्थनीति से अत्यन्त गहरा सम्बन्ध है –

- **संयुक्त राष्ट्र के सतत् विकास लक्ष्य (SDG)** – विशेषतः SDG 8 (आर्थिक विकास), SDG 13 (जलवायु-कार्य), SDG 16 (शान्ति एवं सुशासन) – ये सभी 'इहलोक' की समृद्धि पर केन्द्रित हैं, जबकि SDG में समाविष्ट सामाजिक न्याय, नैतिक उत्तरदायित्व एवं सांस्कृतिक विविधता का संरक्षण 'परलोक' (आध्यात्मिक-सामाजिक कल्याण) के सूक्ष्म स्वरूप के रूप में देखा जा सकता है।

- **हरित विकास (Green Growth)** एवं **अन्तःसमावेशी विकास (Inclusive Growth)** की अवधारणाएँ – आज आर्थिक विकास केवल GDP वृद्धि तक सीमित नहीं रहा, वरन् पर्यावरणीय स्थिरता एवं सामाजिक न्याय को भी समान महत्व दिया जाता है। यही 'उभौ लोकौ' (भौतिक विकास + नैतिक-पर्यावरणीय उत्तरदायित्व) का स्मरण है।

- **भारत की राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP 2020)** भी वैदिक आदर्श 'विद्या विनयेन शोभते' को पुनः प्रतिष्ठित करते हुए आर्थिक उपयोगिता और नैतिक-चारित्रिक निर्माण के मध्य सामंजस्य स्थापित करने पर बल देती है।

इस प्रकार यह श्लोक बताता है कि सच्ची समृद्धि वही है, जो दिखने वाली सम्पन्नता और अदृश्य सदाचार – **दोनों** को एक साथ विकसित करती है।

श्लोक १३ – त्रयी की व्यापक परिभाषा

मूल संस्कृत श्लोक

अङ्गानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा न्यायविस्तरः ।

धर्मशास्त्रं पुराणं च त्रयीदं सर्वमुच्यते ॥१३॥

IAST (लिप्यंतरण)

aṅgāni vedāś catvāro mīmāṃsā nyāyavistaraḥ ।

dharmaśāstraṃ purāṇaṃ ca trayīdaṃ sarvam ucyate ॥13॥

शब्दार्थ (शब्द-कोश)

संस्कृत पद	**हिन्दी अर्थ**
अङ्गानि	छह वेदांग (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष)
वेदाः चत्वारः	चारों वेद (ऋक्, यजुः, साम, अथर्व)
मीमांसा	मीमांसा शास्त्र (पूर्व-मीमांसा एवं उत्तर-मीमांसा/वेदान्त)
न्यायविस्तरः	न्यायशास्त्र (तर्क-विज्ञान एवं वैधानिक युक्तियाँ)
धर्मशास्त्रम्	धर्मशास्त्र (स्मृतियाँ, आचार-संहिताएँ एवं विधि-नियम)
पुराणम्	पुराण (प्राचीन इतिहास, लोककथा, ब्रह्माण्ड-विद्या एवं संस्कृति-कोश)
त्रयी	(विस्तृत अर्थ में) समस्त शास्त्रीय विद्या-समूह
सर्वम्	यह सम्पूर्ण विद्या-समूह 'त्रयी' कहलाता है

भावार्थ (सारांश)

पूर्व श्लोक (१२) में त्रयी को तीन वेदों (ऋग्, यजुः, साम) तक सीमित रखा गया था, किन्तु इस श्लोक में **त्रयी की परिभाषा का विस्तार** किया गया है। अब त्रयी में निम्नलिखित सभी का समावेश कर दिया गया है –

- **चारों वेद** (ऋक्, यजुः, साम, अथर्व) – क्योंकि अथर्ववेद भी अब सम्मिलित हो गया।

- **छह वेदांग** – वेदों के अध्ययन हेतु आवश्यक सहायक शास्त्र (उच्चारण, यज्ञ-विधि, व्याकरण, निर्वचन, छन्द एवं ज्योतिष)।
- **मीमांसा** – वेद-वाक्यों की व्याख्या एवं कर्मकाण्ड का दार्शनिक आधार।
- **न्यायशास्त्र** – तर्क, वितर्क एवं प्रमाण-मीमांसा का शास्त्र।
- **धर्मशास्त्र** – समाज, राज्य एवं व्यक्ति के लिए आचार-विधान एवं न्याय-संहिता।
- **पुराण** – इतिहास, पौराणिक कथाएँ, ब्रह्माण्ड-रचना एवं लौकिक-पारलौकिक ज्ञान।

यह **सम्पूर्ण विद्या-समूह** (सर्वम्) ही अब 'त्रयी' कहलाता है।

मूल संदेश (शासन-सूत्र)

त्रयी केवल मन्त्र-संहिता मात्र नहीं, वरन् **समग्र ज्ञान-परम्परा** है – जिसमें धर्म, दर्शन, तर्क, विज्ञान, भाषा, खगोल, विधि एवं इतिहास सभी समाहित हैं। इस व्यापक दृष्टि से राजा (शासक) को यह शिक्षा मिलती है कि शासन-व्यवस्था का आधार **एकांगी नहीं, बहुआयामी एवं समग्र** होना चाहिए। ज्ञान के किसी भी एक पक्ष को अनदेखा करने से नीति अपूर्ण एवं असंतुलित हो जाती है।

समसामयिक दृष्टिकोण (आधुनिक प्रासंगिकता)

- **राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP 2020)** : यह श्लोक आधुनिक NEP 2020 की **बहुविषयकता (Multidisciplinary Education)** के सिद्धांत का सटीक प्राचीन प्रतिरूप है। NEP 2020 में विद्यार्थियों को कला, विज्ञान, वाणिज्य, मानविकी एवं प्रौद्योगिकी के विभिन्न विषयों को एक साथ चुनने की स्वतंत्रता दी गई है – ठीक वैसे ही जैसे त्रयी ने वेदान्त, व्याकरण, ज्योतिष, न्याय, मीमांसा एवं पुराण को एक ही छतरी में एकत्रित किया था।
- **पारम्परिक भारतीय विश्वविद्यालय (तक्षशिला, नालन्दा)** : इन प्राचीन उच्च-शिक्षा केन्द्रों में भी यही बहुविषयक पद्धति थी, जहाँ धर्मशास्त्र के साथ-साथ खगोलशास्त्र, चिकित्सा, गणित एवं कूटनीति का अध्ययन होता था।
- **आधुनिक नीति-निर्माण** : आज भी किसी भी जटिल सामाजिक समस्या (जैसे जलवायु परिवर्तन, गरीबी, डिजिटल विभाजन) का समाधान तभी निकलता है, जब उसमें तकनीकी (विज्ञान), विधिक (धर्मशास्त्र), नैतिक (मीमांसा), ऐतिहासिक (पुराण) एवं गणितीय (ज्योतिष/व्याकरण) दृष्टिकोणों का समन्वय किया जाता है।

श्लोक १४ – वार्ता : कृषि, पशुपालन, एवं व्यापार

मूल संस्कृत श्लोक

पाशुपाल्यं कृषिः पण्यं वार्ता वार्तानुजीविनाम् ।

सम्पन्नो वार्तया साधु नावृत्तेर्भयमृच्छति ॥१४॥

IAST (लिप्यंतरण)

pāśupālyaṃ kṛṣiḥ paṇyaṃ vārtā vārtānujīvinām ।

sampanno vārtayā sādhu nāvṛtter bhayam ṛcchati ॥14॥

शब्दार्थ (शब्द-कोश)

संस्कृत पद	हिन्दी अर्थ
पाशुपाल्यम्	पशुपालन (गौ-पालन, दुग्ध-व्यवसाय, पशु-संवर्धन)
कृषिः	कृषि (खेती-बाड़ी, भूमि-उत्पादन)
पण्यम्	व्यापार (वाणिज्य, क्रय-विक्रय, वस्तु-विनिमय)
वार्ता	अर्थ-व्यवस्था (आजीविका के उपाय)
वार्तानुजीविनाम्	अर्थ-व्यवस्था पर आश्रित लोगों / समस्त जन-समुदाय के लिए
सम्पन्नः	सम्पन्न / समृद्ध
वार्तया	अर्थ-व्यवस्था (उपर्युक्त तीनों साधनों) के द्वारा
साधु	सज्जन व्यक्ति / कोई भी मनुष्य
न	नहीं
आवृत्तेः	बेरोज़गारी, पराश्रय, या कर्म-विहीनता से
भयम्	भय / आशंका
ऋच्छति	प्राप्त होता है / भोगता है

भावार्थ (सारांश)

पशुपालन, कृषि और व्यापार – ये तीनों ही 'वार्ता' अर्थात् अर्थ-व्यवस्था के आधार-स्तम्भ हैं। इन तीन साधनों से सम्पन्न एवं युक्त व्यक्ति कभी भी **बेरोज़गारी**, **आर्थिक निराश्रयता** अथवा **पराश्रित जीवन** के भय से ग्रसित नहीं होता। अर्थात् स्वावलम्बी आजीविका ही सच्ची सुरक्षा एवं सम्मान का मूल है।

मूल संदेश (शासन-सूत्र)

राज्य की अर्थ-व्यवस्था का मजबूत त्रिपदीय आधार है – **कृषि** (प्राथमिक क्षेत्र), **पशुपालन** (गौण कृषि एवं डेयरी क्षेत्र) और **व्यापार** (तृतीयक एवं वाणिज्यिक क्षेत्र)। इन तीनों को संरक्षण एवं संवर्धन देकर ही राजा अपनी प्रजा को **पराश्रय-मुक्त (आत्मनिर्भर)** बना सकता है। जिस समाज में ये तीनों क्रियाशील हों, वहाँ भय एवं आर्थिक असंतुलन का कोई स्थान नहीं होता।

समसामयिक दृष्टिकोण (आधुनिक प्रासंगिकता)

आज के संदर्भ में यह श्लोक **आत्मनिर्भर भारत (Self-Reliant India)** अभियान की आधारशिला है –

- **कृषि एवं पशुपालन** – प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना, डेयरी विकास योजना (जैसे 'राष्ट्रीय गोकुल मिशन'), तथा जैविक खेती (Organic Farming) के माध्यम से ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सबल बनाया जा रहा है।

- **व्यापार एवं वाणिज्य – 'Local for Global'** एवं **'Vocal for Local'** का नारा इसी वैदिक दृष्टि को प्रतिबिम्बित करता है। स्टार्ट-अप, डिजिटल भुगतान एवं ई-कॉमर्स ने आज पण्य (व्यापार) के क्षेत्र को नवीन आयाम दिया है।
- इसके अतिरिक्त, संयुक्त राष्ट्र के **SDG-2 (शून्य भूख)** एवं **SDG-8 (गुणवत्तापूर्ण कार्य एवं आर्थिक विकास)** का लक्ष्य भी इन्हीं तीन स्तम्भों (कृषि, पशुपालन, व्यापार) के समुचित संतुलन पर टिका है। यही कारण है कि विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में कृषि एवं लघु-उद्योगों को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जाती है।

श्लोक १५ – दण्डनीति की व्युत्पत्ति एवं स्वरूप

मूल संस्कृत श्लोक

दमो दण्ड इति प्रोक्तस्तात्स्थ्याद्दण्डो महीपतिः ।

तस्य नीतिर्दण्डनीतिर्नयनान्नीतिरुच्यते ॥१५॥

IAST (लिप्यंतरण)

damo daṇḍa iti proktas tātsthyād daṇḍo mahīpatiḥ /

tasya nītir daṇḍanītir nayanān nītir ucyate //15//

शब्दार्थ (शब्द-कोश)

संस्कृत पद	**हिन्दी अर्थ**
दमः	अनुशासन, संयम, इन्द्रिय-निग्रह तथा नियन्त्रण-शक्ति
दण्डः	दण्ड (शासन-शक्ति, न्याय-व्यवस्था, प्रतिबन्ध)
इति	इस प्रकार / ऐसा
प्रोक्तः	कहा गया है / उद्घोषित किया गया है
तात्स्थ्यात्	अभिन्न सम्बन्ध / एकरूपता / आधारभूत संयोग के कारण
महीपतिः	राजा / भूमि-स्वामी
तस्य	उस (राजा) की
नीतिः	नीति / प्रशासनिक रणनीति
दण्डनीतिः	दण्ड-शास्त्र / शासन-विज्ञान (दण्डधारण की कला)
नयनात्	नेतृत्व करने, आगे ले जाने तथा व्यवस्था-संचालन के कारण
नीतिः	नीति (अच्छा आचरण, युक्तियुक्त प्रशासन)
उच्यते	कहलाती है / अभिहित की जाती है

भावार्थ (सारांश)

शास्त्रों में **'दम' (अनुशासन व संयम)** को ही 'दण्ड' कहा गया है। राजा अपनी **दण्ड-शक्ति से अभिन्न** होने के कारण स्वयं भी 'दण्ड' कहलाता है। उस राजा की विशिष्ट प्रशासनिक पद्धति ही **'दण्डनीति'** है; और चूँकि राजा **'नयन' (नेतृत्व एवं मार्ग-दर्शन)** करता है, इसलिए उसकी कला को 'नीति' (शासन-कौशल) कहा जाता है। अत: राजा, दण्ड और नीति – तीनों परस्पर एक-दूसरे के पूरक एवं अभिन्न अंग हैं।

मूल संदेश (शासन-सूत्र)

दण्डनीति केवल कठोर दण्ड-विधान मात्र नहीं है, वरन् **अनुशासन एवं व्यवस्था की समग्र प्रणाली** है। राजा (शासन-तंत्र) को 'दण्ड' इसलिए कहा गया कि वह अपने चरित्र, व्यवहार एवं निर्णयों से अनुशासन का जीवन्त प्रतीक हो। 'नीति' शब्द 'नयन' (प्रेरणा, दिशा-दर्शन एवं उन्नयन) से बना है, अतः शासन का मूल उद्देश्य प्रजा को **सुमार्ग पर अग्रसर करना** है, न कि केवल दमन करना। सच्ची दण्डनीति वही है, जो संयम-बुद्धि एवं नेतृत्व-कला के संगम से कार्य करे।

समसामयिक दृष्टिकोण (आधुनिक प्रासंगिकता)

आधुनिक राज्य-व्यवस्था में इस श्लोक का सीधा सम्बन्ध **लोक प्रशासन (Public Administration)** एवं **सुशासन (Good Governance)** से है –

- आधुनिक 'राज्य' (State) अपनी **विधि-व्यवस्था (Legal System)** तथा **न्याय-तंत्र (Judiciary)** के माध्यम से इसी 'दण्ड' का प्रतिनिधित्व करता है।
- **'विधि का शासन' (Rule of Law)** की अवधारणा यही सिखाती है कि शासकीय तन्त्र स्वयं दण्ड-विधान से बँधा है – अर्थात 'तात्स्थ्यात्' (राजा एवं दण्ड की अभिन्नता) का आधुनिक रूप 'संविधान की सर्वोच्चता' है।
- साथ ही, **'शक्ति का विनियमन' (Regulation of Power)** एवं **'सार्वजनिक नीति-निर्माण' (Public Policy Making)** की सम्पूर्ण प्रक्रिया 'नीति' के इसी व्युत्पत्तिगत अर्थ – 'नयन' (मार्ग-दर्शन) – पर टिकी है। प्रशासन का कोई भी निर्णय तभी सार्थक है, जब वह जनता को संकट से निकालकर **समृद्धि एवं व्यवस्था के मार्ग** पर ले जाए।

श्लोक १६ – राजा : विद्याओं का रक्षक

मूल संस्कृत श्लोक

तयात्मानं च शेषाश्च विद्याः पायान्महीपतिः ।

विद्या लोकोपकारिण्यस्तत्पाता हि महीपतिः ॥१६॥

IAST (लिप्यंतरण)

tayātmānaṃ ca śeṣāś ca vidyāḥ pāyān mahīpatiḥ /

vidyā lokopakāriṇyas tatpātā hi mahīpatiḥ //16//

शब्दार्थ (शब्द-कोश)

संस्कृत पद	**हिन्दी अर्थ**
तया	उस (दण्डनीति) द्वारा

आत्मानम्	स्वयं की (रक्षा)
च	और
शेषाः	शेष (अन्य तीनों विद्याएँ – आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता)
विद्याः	विद्याओं की
पायात्	रक्षा करे
महीपतिः	राजा / पृथ्वी का स्वामी
विद्याः	ये सभी विद्याएँ
लोकोपकारिण्यः	लोक (समाज/जगत) का उपकार करने वाली हैं
तत्पाता	उन (विद्याओं) का रक्षक / संरक्षक
हि	निश्चय ही
महीपतिः	राजा (ही) है

भावार्थ (सारांश)

राजा को चाहिए कि **दण्डनीति** (शासन-व्यवस्था) के माध्यम से **सर्वप्रथम अपनी** रक्षा करे और **तत्पश्चात् शेष तीनों विद्याओं** – आन्वीक्षिकी (तर्क-दर्शन), त्रयी (वैदिक नीति) और वार्ता (अर्थव्यवस्था) – की भी रक्षा करे। इन चारों विद्याओं का स्वभाव **लोक-कल्याणकारी** है, अतः राजा इनका **स्वामी नहीं, अपितु रक्षक एवं ट्रस्टी** है। उसका कर्तव्य इन विद्याओं को पनपने देना, उनका सम्मान करना और उन्हें अवनति से बचाना है।

मूल संदेश (शासन-सूत्र)

शासन का मूल धर्म केवल जनता की रक्षा नहीं, वरन् **ज्ञान-परम्परा की रक्षा** भी है। विद्याएँ राज्य की सम्पत्ति हैं, राजा उनका संरक्षक मात्र है। जो शासक विद्याओं को पोषित करता है, वही वास्तव में अपने राज्य और अपनी आत्मा दोनों की रक्षा करता है। विद्या-विहीन शासन अंधा होता है – यही इस सूत्र का मर्म है।

समसामयिक दृष्टिकोण (आधुनिक प्रासंगिकता)

यह श्लोक महात्मा गांधी के **'ट्रस्टीशिप' सिद्धान्त** (Trusteeship) का प्राचीन आधार है। जिस प्रकार गांधी जी ने कहा कि धनी व्यक्ति अपनी सम्पत्ति का स्वामी न होकर समाज का ट्रस्टी है, उसी प्रकार यहाँ राजा को विद्याओं का ट्रस्टी बताया गया है।

आधुनिक संदर्भ में –

- **शिक्षा नीति** – राज्य का कर्तव्य है कि वह अनुसंधान, कला, साहित्य एवं विज्ञान को बिना किसी भेदभाव के संरक्षण दे। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (UGC) एवं विभिन्न संस्थान सरकार के इसी ट्रस्टीशिप दायित्व के प्रतीक हैं।
- **स्वतन्त्र प्रेस एवं विचारधारा** – लोकतन्त्र में सरकार का दायित्व है कि वह ज्ञान-विज्ञान, दर्शन एवं अर्थशास्त्र को राजनीतिक हस्तक्षेप से बचाए, ठीक उसी प्रकार जैसे राजा चारों विद्याओं की रक्षा करता है।

- **सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण** – सरकारों द्वारा प्राचीन ग्रन्थों का डिजिटलीकरण, संग्रहालयों का रखरखाव एवं शास्त्रीय भाषाओं का प्रोत्साहन आज की 'विद्या-रक्षा' का ही आधुनिक रूप है।

इस प्रकार यह श्लोक घोषित करता है कि सत्ता ज्ञान पर अधिकार नहीं, ज्ञान की सेविका है – यही सच्चे सुशासन की कसौटी है।

श्लोक १७ – विद्या-व्युत्पत्ति एवं चतुर्वर्ग

मूल संस्कृत श्लोक

विद्याभिराभिर्निपुणं चतुर्वर्गमुदारधीः ।

विद्यात्तदासां विद्यात्वं विद ज्ञाने निरुच्यते ॥१७॥

IAST (लिप्यंतरण)

vidyābhir ābhir nipuṇaṃ caturvargam udāradhīḥ ।

vidyāt tad āsāṃ vidyātvaṃ vida jñāne nir ucyate ॥17॥

शब्दार्थ (शब्द-कोश)

संस्कृत पद	**हिन्दी अर्थ**
विद्याभिः	इन विद्याओं (आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता, दण्डनीति) के द्वारा
आभिः	इन्हीं (विद्याओं) से
निपुणम्	कुशलतापूर्वक / निपुणता के साथ
चतुर्वर्गम्	चारों पुरुषार्थ – **धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष**
उदारधीः	उदार-बुद्धि (विशाल दृष्टिकोण) वाला नेता / शासक
विद्यात्	प्राप्त करता है / साध लेता है
तत्	वह (इसलिए)
आसाम्	इन (विद्याओं) का
विद्यात्वम्	'विद्या' होने का स्वरूप / तत्त्व
विद	'विद्' धातु (ज्ञान, जानना)
ज्ञाने	ज्ञान के अर्थ में
निरुच्यते	कहा गया है / निरूपित किया जाता है

भावार्थ (सारांश)

उदार-बुद्धि एवं विशाल-दृष्टि वाला नेता (शासक) इन चारों विद्याओं – तर्क-दर्शन, वैदिक-नीति, अर्थ-व्यवस्था एवं दण्ड-शासन – के माध्यम से **चतुर्वर्ग** (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) को कुशलतापूर्वक प्राप्त कर लेता है। इन्हीं विद्याओं को 'विद्या'

कहने का कारण यह है कि संस्कृत में 'विद्' धातु का अर्थ 'जानना' होता है। अतः जो ज्ञान जीवन के इन चारों पुरुषार्थों को साधने में सहायक हो, वही वास्तव में 'विद्या' कहलाने का अधिकारी है। केवल सूचना या पुस्तकीय ज्ञान विद्या नहीं, वरन् वह ज्ञान जो मनुष्य को उसके सभी संभाव्य जीवन-लक्ष्यों तक पहुँचाए।

मूल संदेश (शासन-सूत्र)

विद्या का उद्देश्य मात्र जानकारी अर्जित करना नहीं, अपितु **मानव-जीवन का सर्वांगीण विकास** करना है। चतुर्वर्ग (धर्म – कर्तव्य-पालन; अर्थ – भौतिक-सम्पन्नता; काम – इच्छाओं का सामंजस्य; मोक्ष – अन्तिम मुक्ति) मानव-आकांक्षाओं की सम्पूर्णता को दर्शाता है। एक कुशल शासक का दायित्व है कि वह विद्याओं के माध्यम से स्वयं को एवं अपनी प्रजा को इन चारों स्तरों पर सम्यक् रूप से स्थापित करे। जो ज्ञान इन चारों में सन्तुलन सिखाए, वही सच्ची 'विद्या' है।

समसामयिक दृष्टिकोण (आधुनिक प्रासंगिकता)

यह श्लोक आधुनिक शिक्षा-प्रणाली के उद्देश्यों पर गहरा प्रकाश डालता है –

- **राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP 2020) की समग्र शिक्षा (Holistic Education)** – NEP 2020 में ज्ञान, कौशल, मूल्यबोध, सृजनात्मकता, एवं चारित्रिक-निर्माण पर बल दिया गया है। चतुर्वर्ग के समानान्तर, आधुनिक शिक्षा केवल नौकरी (अर्थ) तक सीमित नहीं, वरन् नैतिकता (धर्म), कलात्मक अभिव्यक्ति (काम) एवं आत्म-साक्षात्कार (मोक्ष) के लिए भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण है।

- **जीवन-कौशल एवं बहु-आयामी विकास** – आज के विश्वविद्यालय 'Liberal Arts', 'Ethics in Business', एवं 'Sustainable Development' जैसे पाठ्यक्रमों पर जोर देते हैं, जो अर्थ (वित्तीय सफलता) को सामाजिक-नैतिक उत्तरदायित्व (धर्म) एवं मानसिक शान्ति (मोक्ष) से जोड़ते हैं।

- **प्रशासनिक दक्षता** – आधुनिक नीति-निर्माण में IAS जैसी सेवाओं के लिए 'सर्वांगीण दृष्टिकोण' (Holistic Perspective) को अनिवार्य माना जाता है, जो इसी श्लोक की मानसिकता को प्रतिबिम्बित करता है – शासक को 'उदारधीः' (व्यापक दृष्टिकोण) वाला होना चाहिए, संकीर्ण एवं एक-आयामी सोच से बचना चाहिए।

विद्याविभाग – सारांश

प्राचीन भारतीय नीति-शास्त्र (अर्थशास्त्र) में चारों विद्याओं के सिद्धान्तों को निम्नलिखित बिन्दुओं में सारांशित किया जा सकता है –

1. **शासन की आधारशिला** – सम्यक् शासन-व्यवस्था चार प्रमुख विद्याओं (तर्क-दर्शन, वैदिक-नीति, अर्थ-व्यवस्था, एवं दण्ड-शासन) पर आधारित है।

2. **दण्डनीति का संरक्षक-रूप** – इन चारों में **दण्डनीति (शासन-विज्ञान)** अन्य तीनों विद्याओं की संरक्षक एवं नियामक है, क्योंकि वह उनके क्रियान्वयन हेतु न्याय-सीमा एवं अनुशासन प्रदान करती है।

3. **आन्वीक्षिकी का आन्तरिक ज्ञान** – **आन्वीक्षिकी (तर्क-दर्शन)** आत्म-ज्ञान एवं चिन्तन-शक्ति को विकसित करने का साधन है, जो शासक को निष्पक्ष एवं विवेकशील बनाती है।

4. **त्रयी का युग्म-कल्याण** – **त्रयी (वैदिक साहित्य)** अपने आचरण से शासक एवं प्रजा को इहलोक (भौतिक-समृद्धि) एवं परलोक (आध्यात्मिक-कल्याण) – दोनों प्रदान करती है।

5. **वार्ता का आर्थिक-आधार** – **वार्ता (अर्थशास्त्र एवं वाणिज्य)** राज्य की आत्मनिर्भरता, आर्थिक-सम्पन्नता एवं व्यापार-व्यवस्था का मार्ग प्रशस्त करती है।

6. **शासक का दायित्व** – राजा (शासक) इन विद्याओं का मात्र उपभोक्ता नहीं, वरन् **ट्रस्टी (संरक्षक)** होता है। उसका अन्तिम कर्तव्य है – **योगक्षेम** (प्रजा की सुरक्षा एवं कल्याण-व्यवस्था) सुनिश्चित करना। शासन का परम लक्ष्य प्रजा के समग्र हित की रक्षा करना ही है।

वर्णाश्रमव्यवस्थाप्रकरणम् (श्लोक १८-३५)

प्रकरण-परिचय: इस प्रकरण में समाज-संरचना के दो आधारभूत स्तंभों-**वर्ण** (चार वर्ग) और **आश्रम** (जीवन के चार पड़ाव)-का विवेचन है। यहाँ वर्ण-व्यवस्था को **गुण-एवं-कर्म-आधारित** (जन्मगत नहीं) बताया गया है। अन्त में सार्वभौमिक-धर्म (अहिंसा, सत्य, दया, क्षमा) को सभी के लिए समान बताया गया है।

श्लोक १८ - त्रि-वर्णीय सामान्य धर्म

मूल संस्कृत श्लोक

इज्याध्ययनदानानि यथाशास्त्रं सनातनः ।

ब्राह्मणक्षत्रियविशां सामान्यो धर्म उच्यते ॥१८॥

IAST (लिप्यंतरण)

ijyādhyayanadānāni yathāśāstraṃ sanātanaḥ ।

brāhmaṇakṣatriyaviśāṃ sāmānyo dharma ucyate ॥18॥

शब्दार्थ (शब्द-कोश)

संस्कृत पद	**हिन्दी अर्थ**
इज्या	यज्ञ / वैदिक अनुष्ठान / पूजा-पाठ
अध्ययन	वेद-शास्त्रों का अध्ययन एवं ज्ञानार्जन
दानानि	दान / परोपकार / जरूरतमंदों को सहायता
यथाशास्त्रम्	शास्त्र-विधि के अनुसार / विधिपूर्वक
सनातनः	सनातन / शाश्वत / चिरन्तन नियम
ब्राह्मण	ब्राह्मण वर्ण (ज्ञान एवं कर्मकाण्ड के उपासक)
क्षत्रिय	क्षत्रिय वर्ण (शासन एवं रक्षा के अधिकारी)
विशाम्	वैश्यों के लिए (कृषि, व्यापार एवं पशुपालन से जुड़े वर्ग)
सामान्यः	सामान्य / उभयनिष्ठ / समान रूप से लागू होने वाला
धर्मः	धर्म / आचार-संहिता / कर्तव्य
उच्यते	कहलाता है / वर्णित किया जाता है

भावार्थ (सारांश)

यज्ञ (इज्या), अध्ययन और दान – ये तीनों कर्म ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य – इन तीनों वर्णों के लिए **शास्त्र-विधि के अनुसार सनातन एवं सामान्य धर्म** हैं। अर्थात् चाहे कोई ब्राह्मण हो, क्षत्रिय हो अथवा वैश्य, इन तीन आधारभूत कर्तव्यों का पालन उन सभी पर अनिवार्य रूप से लागू होता है। (शूद्रों के कर्तव्यों का उल्लेख आगे के श्लोकों में किया गया है।)

मूल संदेश (शासन-सूत्र)

इस श्लोक से तीन महत्वपूर्ण सिद्धान्त निकलते हैं –

1. **ज्ञान और संस्कार** – अध्ययन (शिक्षा) और इज्या (आध्यात्मिक-नैतिक अनुष्ठान) समाज के सभी उच्च वर्गों का आधार हैं।
2. **आर्थिक नैतिकता** – दान (परोपकार) को भी धर्म का अभिन्न अंग बताया गया है, जो समाज में धन के पुनर्वितरण को सुनिश्चित करता है।
3. **सामूहिक उत्तरदायित्व** – ये कर्तव्य समाज-सुधार, सांस्कृतिक संरक्षण और आर्थिक सन्तुलन – तीनों की पूर्ति करते हैं।

समसामयिक दृष्टिकोण (आधुनिक प्रासंगिकता)

आज के वैश्विक एवं राष्ट्रीय सन्दर्भ में इस श्लोक के तीनों तत्त्व स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं –

- **इज्या (यज्ञ / अनुष्ठान) → सामाजिक-धार्मिक उत्तरदायित्व** – आधुनिक संदर्भ में यह सामाजिक एवं पर्यावरणीय चेतना, संस्कृति के संरक्षण तथा नैतिक व्यवसाय-आचार (Business Ethics) का प्रतीक है।
- **अध्ययन → शिक्षा का अधिकार (RTE – Right to Education)** – आज शिक्षा को मौलिक अधिकार घोषित किया गया है। 'सबको शिक्षा' का आधुनिक आन्दोलन इसी 'अध्ययन' के सार्वभौमिकीकरण का विस्तारित स्वरूप है।
- **दान → कॉरपोरेट सामाजिक दायित्व (CSR – Corporate Social Responsibility)** – कम्पनियों को अब अपने लाभ का एक हिस्सा सामाजिक कल्याण (शिक्षा, स्वास्थ्य, पर्यावरण) में लगाना अनिवार्य है। इसके अतिरिक्त, व्यक्तिगत एवं पारिवारिक **परोपकार (Philanthropy)** और दान-संस्कृति भी आधुनिक समाज-व्यवस्था का महत्वपूर्ण अंग बनी हुई है।

इस प्रकार यह प्राचीन श्लोक आज के 'सर्वोदय' एवं 'सबका साथ, सबका विकास' के मूलमन्त्र को भी रेखांकित करता है, जहाँ समाज के सम्पन्न एवं प्रभावशाली वर्ग पर यह दायित्व है कि वे ज्ञान-दान और नैतिक कर्मों के माध्यम से सम्पूर्ण समाज का कल्याण करें।

श्लोक १९ – क्षत्रिय का विशेष धर्म

मूल संस्कृत श्लोक

प्रजानां पालनं दानमिज्याध्ययनमेव च ।

क्षत्रियस्य विशेषः स्याद्धर्मो राज्याभिवृद्धये ॥१९॥

IAST (लिप्यंतरण)

prajānāṃ pālanaṃ dānam ijyādhyayanam eva ca ।

kṣatriyasya viśeṣaḥ syād dharmo rājyābhivṛddhaye ॥19॥

शब्दार्थ (शब्द-कोश)

संस्कृत पद	हिन्दी अर्थ
प्रजानाम्	प्रजा / नागरिकों की
पालनम्	पालन / शासन / सुरक्षा एवं देख-रेख
दानम्	दान / परोपकार / जरूरतमंदों को सहायता
इज्या	यज्ञ / वैदिक अनुष्ठान / नैतिक-आध्यात्मिक कृत्य
अध्ययनम्	वेद-शास्त्रों का अध्ययन / ज्ञानार्जन
क्षत्रियस्य	क्षत्रिय वर्ण (शासक एवं योद्धा वर्ग) के लिए
विशेषः	विशिष्ट / अतिरिक्त / सामान्य से भिन्न कर्तव्य
धर्मः	धर्म / अनिवार्य कर्तव्य / आचार-संहिता
राज्याभिवृद्धये	राज्य की वृद्धि, समृद्धि एवं उत्कर्ष के लिए

भावार्थ (सारांश)

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के लिए जो सामान्य धर्म (यज्ञ, अध्ययन, दान) हैं, उनके साथ-साथ **क्षत्रिय का एक विशेष धर्म** है – वह है **प्रजा का पालन** अर्थात् सुरक्षा, शासन, न्याय और जनता की व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाना। यही विशेष कर्तव्य राज्य की वृद्धि, समृद्धि और स्थिरता का मूल स्रोत है।

मूल संदेश (शासन-सूत्र)

एक शासक का सर्वोच्च धर्म केवल आध्यात्मिक-सामाजिक कर्मकाण्डों तक सीमित नहीं है, बल्कि उसका **केन्द्रीय कर्तव्य प्रजा की रक्षा एवं सुशासन** है। राज्य की सम्पन्नता, उसकी सीमाओं की सुरक्षा और जनता के जीवन-स्तर में सुधार – ये सब 'प्रजा-पालन' के अन्तर्गत आते हैं। शासक का वैभव और प्रतिष्ठा उसके भव्य महलों से नहीं, बल्कि उसकी प्रजा के सुख-सन्तोष से मापी जाती है।

समसामयिक दृष्टिकोण (आधुनिक प्रासंगिकता)

आधुनिक लोकतांत्रिक और संवैधानिक व्यवस्था में इस श्लोक की प्रासंगिकता स्पष्ट रूप से दिखाई देती है –

- **प्रजा-पालन → राष्ट्र-सुरक्षा एवं जन-कल्याण** – आज सरकार का प्राथमिक कर्तव्य **राष्ट्र की सुरक्षा** (सेना, पुलिस, खुफिया तंत्र) और **जनता का कल्याण** (शिक्षा, स्वास्थ्य, सामाजिक सुरक्षा, बुनियादी सुविधाएँ) सुनिश्चित करना है।
- **Welfare State (कल्याणकारी राज्य)** – इसकी सम्पूर्ण अवधारणा इसी 'प्रजा-पालन' की आधुनिक परिणति है। शासन की सफलता उसके नागरिकों के जीवन-स्तर, मानव-विकास सूचकांक (HDI) और सामाजिक न्याय की स्थिति से आँकी जाती है।

- **सुशासन (Good Governance)** – आज की प्रशासनिक शब्दावली में पारदर्शिता, उत्तरदायित्व और जन-केन्द्रित नीति-निर्माण ही 'क्षत्रिय-धर्म' का आधुनिक रूप हैं।

(क्षत्रिय अर्थात् शासन-प्रणाली के प्रमुख के अन्य आवश्यक व्यक्तिगत गुणों – जैसे शौर्य, धैर्य, सत्यनिष्ठा, निष्पक्षता – पर आगामी श्लोकों में विस्तार से विचार किया गया है, जिनका अध्ययन विशेष रूप से शासक-वर्ग एवं प्रशासनिक अधिकारियों के लिए आवश्यक है।)

श्लोक २० – वैश्य का विशेष धर्म

मूल संस्कृत श्लोक

कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यस्य विहितं कर्म ।

स्वधर्मेणोपजीवनं पितृदेवातिथिक्रिया ॥२०॥

IAST (लिप्यंतरण)

kṛṣigorakṣyavāṇijyaṃ vaiśyasya vihitaṃ karma ।

svadharmeṇopajīvanaṃ pitṛdevātithikriyā ॥20॥

शब्दार्थ (शब्द-कोश)

संस्कृत पद	**हिन्दी अर्थ**
कृषि	कृषि / खेती-बाड़ी
गोरक्ष्य	पशुपालन (विशेषतः गो-रक्षण एवं पालन)
वाणिज्यम्	व्यापार / वाणिज्य / वस्तुओं का क्रय-विक्रय
वैश्यस्य	वैश्य वर्ण के व्यक्ति का
विहितम्	विधान / शास्त्र-विहित कर्तव्य
कर्म	आजीविका-प्रधान कर्म / वृत्ति
स्वधर्मेण	अपने (वर्णाश्रम-अनुसार) धर्म के द्वारा
उपजीवनम्	आजीविका / जीविका-निर्वाह
पितृ	पितरों की (तर्पण, श्राद्धादि विधियाँ)
देव	देवताओं की (यज्ञ, हवन, पूजन)
अतिथि	अतिथियों की (आतिथ्य-सत्कार)
क्रिया	सेवा / पूजा / अनुष्ठान

भावार्थ (सारांश)

वैश्य का विशिष्ट एवं विहित कर्तव्य है – **कृषि, पशुपालन और व्यापार** के माध्यम से अपनी आजीविका अर्जित करना। इसके साथ ही उसे अपने स्व-धर्म के अनुसार **पितरों (पूर्वजों), देवताओं (प्राकृतिक एवं आध्यात्मिक शक्तियों)** तथा **अतिथियों** की सेवा-पूजा एवं आतिथ्य-सत्कार करना भी अनिवार्य रूप से कर्तव्य है। अर्थात् वैश्य को धनार्जन के साथ-साथ सामाजिक एवं धार्मिक उत्तरदायित्वों का भी पालन करना चाहिए।

मूल संदेश (शासन-सूत्र)

इस श्लोक से वैश्य वर्ण के लिए तीन स्तरीय उत्तरदायित्व स्पष्ट होते हैं –

1. **आर्थिक गतिविधि** – कृषि, पशुपालन एवं व्यापार से अर्थ-उत्पादन, जो समाज की रीढ़ हैं।
2. **नैतिक आधार** – 'स्वधर्मेण' पद से स्पष्ट है कि आजीविका भी धर्म-बुद्धि से (ईमानदारी, न्याय, कर-भुगतान आदि के साथ) की जानी चाहिए।
3. **सामाजिक-सांस्कृतिक सेवा** – पितृ (परम्परा), देव (प्रकृति एवं नैतिक व्यवस्था) तथा अतिथि (समाज के अन्य सदस्य/अभ्यागत) – इन तीनों के प्रति वैश्य का कर्तव्य है, जो अर्थव्यवस्था को मानवीय एवं सांस्कृतिक मूल्यों से जोड़ता है।

समसामयिक दृष्टिकोण (आधुनिक प्रासंगिकता)

आधुनिक युग में वैश्य-धर्म अपने विस्तारित रूप में परिलक्षित होता है –

- **स्टार्ट-अप कल्चर एवं उद्यमिता** – आज का उद्यमी (Entrepreneur) वैश्य ही है, जो नवाचार (Innovation), व्यापार एवं रोजगार-सृजन के माध्यम से अर्थव्यवस्था को गति देता है। 'कृषि' अब एग्री-टेक, 'गोरक्ष्य' अब डेयरी एवं पशु-आधारित उद्योग, तथा 'वाणिज्य' अब ई-कॉमर्स एवं वैश्विक व्यापार के रूप में विस्तृत है।
- **आत्मनिर्भर भारत (Atmanirbhar Bharat)** – स्थानीय उत्पादन, स्वदेशी वस्तुओं का प्रचार, कृषि-व्यापार में आत्मनिर्भरता – यह वैश्य-धर्म का ही आधुनिक राजनैतिक-आर्थिक रूप है।
- **कॉरपोरेट सामाजिक दायित्व (CSR) एवं ESG (Environmental, Social, Governance)** – आज उद्योग-जगत पर यह दायित्व है कि वे केवल मुनाफा न कमाएँ, वरन् 'पितृ-देव-अतिथि' के आधुनिक रूपों – पर्यावरण-संरक्षण, सामाजिक कल्याण (शिक्षा, स्वास्थ्य) एवं स्थानीय समुदायों के उत्थान – में भी योगदान दें। यही CSR एवं फिलैंथ्रॉपी का वास्तविक तात्पर्य है।
- **अतिथि-सेवा → ग्राहक-सेवा एवं हितधारक-केन्द्रितता** – व्यापार में 'अतिथि देवो भवः' का सिद्धान्त आज 'कस्टमर फर्स्ट' एवं 'स्टेकहोल्डर कैपिटलिज्म' में परिवर्तित हो गया है।

इस प्रकार यह श्लोक आधुनिक उद्यमियों, व्यापारियों एवं किसानों को यह शिक्षा देता है कि अर्थोपार्जन के साथ-साथ परम्परा, पर्यावरण एवं समाज के प्रति उत्तरदायित्व ही उनके धर्म की पूर्णता है।

श्लोक २१ – शूद्र का कर्तव्य-विधान

मूल संस्कृत श्लोक

शूद्रस्य धर्मः शुश्रूषा द्विजानामनुपूर्वशः ।

शुद्धा च वृत्तिस्तत्सेवा कारुचारणकर्म च ॥२१॥

IAST (लिप्यंतरण)

śūdrasya dharmaḥ śuśrūṣā dvijānām anupūrvaśaḥ ।

śuddhā ca vṛttis tatsevā kārucāraṇakarma ca ॥21॥

शब्दार्थ (शब्द-कोश)

संस्कृत पद	**हिन्दी अर्थ**
शूद्रस्य	शूद्र वर्ण के व्यक्ति का
धर्मः	मुख्य कर्तव्य / आचार-संहिता
शुश्रूषा	सेवा-भाव से कार्य करना / तत्परता से आज्ञा-पालन
द्विजानाम्	द्विजों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) की
अनुपूर्वशः	क्रम-विशेष से / यथायोग्य / पूर्वापर-क्रम में
शुद्धा	पवित्र / सात्विक / निष्कपट
वृत्तिः	आजीविका / जीवन-निर्वाह का साधन
तत्सेवा	उन द्विजों की सेवा
कारु	शिल्प-कर्म / हस्तकला / वास्तु-कला
चारण	कृषि, पशुपालन एवं गो-संरक्षण
कर्म	क्रिया / व्यवसाय

भावार्थ (सारांश)

शूद्र का मुख्य धर्म निम्नलिखित चार कर्तव्य हैं –

(१) **द्विजों की सेवा** – ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य – इन तीनों की यथाक्रम सेवा करना।

(२) **शुद्ध वृत्ति** – ईमानदारी, सरलता एवं निष्कपट भाव से आजीविका अर्जित करना।

(३) **शिल्प-कर्म (कारु)** – बढ़ईगीरी, लोहारी, कुम्हारी, बुनाई, मूर्तिकला आदि विभिन्न हस्तशिल्प एवं उत्पादन-कार्य।

(४) **चारण-कर्म** – कृषि-कार्य, बागवानी, पशु-पालन, गो-संरक्षण तथा अन्न-उत्पादन से जुड़े कार्य।

इस प्रकार यह श्लोक **'श्रम का गौरव' (Dignity of Labour)** का प्राचीनतम प्रमाण प्रस्तुत करता है।

मूल संदेश (शासन-सूत्र)

श्लोक बताता है कि शूद्र का धर्म केवल 'सेवा' नहीं, वरन् **रचनात्मक श्रम, कृषि, पशुपालन और हस्तशिल्प** भी हैं। तात्पर्य यह है कि समाज की उत्पादन-श्रृंखला, आर्थिक गतिविधियाँ और बुनियादी भौतिक आवश्यकताएँ शूद्र वर्ग की निपुणता एवं मेहनत पर निर्भर करती हैं। कोई भी कर्म छोटा नहीं है, जब तक वह **शुद्ध, ईमानदारी एवं**

अनुशासनपूर्वक किया जाए। एक सुयोग्य शासक को चाहिए कि वह इन 'उत्पादन-आधारित' व्यवसायों को सुरक्षा, पहचान एवं बढ़ावा दे।

समसामयिक दृष्टिकोण (आधुनिक प्रासंगिकता)

आज के आर्थिक-सामाजिक संदर्भ में इस श्लोक की चारों बातें नए रूपों में जीवन्त हैं –

- **कारु (शिल्प-कर्म)** → आधुनिक **MSME (सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्यम)**, हस्तशिल्प निर्यात, जनजातीय कला, स्टार्ट-अप एवं **'वोकल फॉर लोकल'** अभियान – ये सब इसी पारंपरिक कौशल-आधारित अर्थव्यवस्था के विस्तार हैं।
- **चारण (कृषि-पशुपालन)** → आज के **किसान, पशुपालक एवं मत्स्य-पालक**; साथ ही **डेयरी उद्योग** (जैसे अमूल) एवं जैविक-खेती के आन्दोलन इसी श्रेणी में आते हैं।
- **शुद्ध वृत्ति** → आज के सन्दर्भ में इसे **कालाबाजारी, मिलावट, भ्रष्टाचार एवं शोषण से मुक्त आजीविका** के रूप में समझा जा सकता है।
- **गिग-इकॉनमी एवं कौशल-विकास** – ड्राइवर, कूरियर, प्लम्बर, इलेक्ट्रीशियन, ब्यूटीशियन जैसे आधुनिक व्यवसाय, जिन्हें **Skill India मिशन, PM Vishwakarma योजना** एवं **राष्ट्रीय कौशल-प्रमाणन** के माध्यम से मान्यता प्राप्त है, ये सब **'कारु-चारण-कर्म'** की ही अद्यतन अभिव्यक्ति हैं।

इस प्रकार यह श्लोक आज 'आत्मनिर्भर भारत' के उस विजन को बल देता है, जहाँ **प्रत्येक श्रम को सम्मान**, **प्रत्येक कौशल को पूँजी** और **प्रत्येक ईमानदार आजीविका को धर्म** माना जाता है।

श्लोक २२ – ब्रह्मचारी के नियम

मूल संस्कृत श्लोक

गुरौ वासोऽग्निशुश्रूषा स्वाध्यायो व्रतचारणम् ।

त्रिकालस्नायिता भैक्षं गुरौ प्राणान्तिकी स्थितिः ॥२२॥

IAST (लिप्यंतरण)

gurau vāso 'gniśuśrūṣā svādhyāyo vratacāraṇam |

trikālasnāyitā bhaikṣaṃ gurau prāṇāntikī sthitiḥ ||22||

शब्दार्थ (शब्द-कोश)

संस्कृत पद	**हिन्दी अर्थ**
गुरौ	गुरु के आश्रम में / गुरु के सान्निध्य में
वासः	निवास करना / स्थायी रूप से रहना
अग्निशुश्रूषा	अग्नि-होत्र एवं यज्ञ-कर्मों की सेवा / देखभाल करना
स्वाध्यायः	वेद-शास्त्रों का नियमित अध्ययन एवं मनन

व्रतचारणम्	ब्रह्मचर्य आदि व्रतों का कठोरतापूर्वक पालन करना
त्रिकालस्नायिता	दिन में तीनों काल (प्रातः, मध्याह्न, सायं) स्नान करना
भैक्षम्	भिक्षा-वृत्ति / माँगकर प्राप्त भोजन-सामग्री से जीवन-निर्वाह
प्राणान्तिकी	प्राणों के अन्त (मृत्यु) तक / आजीवन
स्थितिः	स्थित रहना / अटूट निष्ठा

भावार्थ (सारांश)

ब्रह्मचारी (विद्यार्थी) के लिए यह अनिवार्य है कि वह –

1. **गुरु के आश्रम में रहे** (गुरौ वासः)।
2. **अग्नि-यज्ञ की सेवा करे** – अर्थात् यज्ञीय एवं दैनिक-कर्मकाण्डीय क्रियाओं में सहायक बने।
3. **स्वाध्याय करे** – वेदों एवं शास्त्रों का अध्ययन, आवृत्ति एवं चिन्तन करे।
4. **व्रतों का पालन करे** – विशेषकर ब्रह्मचर्य एवं इन्द्रिय-निग्रह के नियमों का पालन करे।
5. **त्रिकाल स्नान करे** – शारीरिक एवं मानसिक शुद्धि हेतु दिन में तीन बार स्नान करे।
6. **भिक्षा-वृत्ति** अपनाए – अहंकार त्यागकर एवं विनम्रतापूर्वक भिक्षा से भोजन प्राप्त करे।
7. **गुरु के प्रति मृत्यु-पर्यन्त निष्ठावान रहे** – अर्थात् विद्याध्ययन की अवधि में गुरु-आज्ञा का पालन, तथा तत्पश्चात् भी गुरु-प्रति सदा आदर एवं कृतज्ञता की भावना रखे।

मूल संदेश (शिक्षा-सूत्र)

यह श्लोक **विद्यार्थी-जीवन के सात आधार-स्तम्भ** प्रस्तुत करता है –

- **संयम** (व्रत, ब्रह्मचर्य),
- **शुद्धि** (त्रिकाल-स्नान),
- **सेवा** (अग्नि-सेवा),
- **अध्ययन** (स्वाध्याय),
- **सादगी** (भिक्षा-वृत्ति),
- **अनुशासन** (गुरु-निवास) एवं
- **कृतज्ञता** (आजीवन गुरु-निष्ठा)।

ये सभी गुण एक छात्र को न केवल विद्वान, वरन् एक सच्चा, विनम्र एवं अनुशासित नागरिक बनाते हैं।

समसामयिक दृष्टिकोण (आधुनिक प्रासंगिकता)

- **गुरौ वासः (गुरु-निवास)** → आधुनिक **आवासीय विद्यालयों (Residential Schools)** जैसे **नवोदय विद्यालय, सैनिक स्कूल, एवं आश्रम-प्रकार के बोर्डिंग स्कूल** में यही अवधारणा अंतर्निहित है, जहाँ छात्र विद्यालय परिसर में ही रहकर शिक्षा एवं संस्कार प्राप्त करते हैं।
- **स्वाध्याय एवं व्रतचारण** → वर्तमान की संरचित पाठ्यचर्या (Structured Curriculum) तथा विद्यालय के **कठोर अनुशासन-नियम (Code of Conduct)** एवं ड्रेस-कोड इसी का आधुनिक स्वरूप हैं।
- **त्रिकाल-स्नान** → आधुनिक विज्ञान की दृष्टि से यह **व्यक्तिगत स्वच्छता (Hygiene)** एवं **समय-प्रबंधन (Time Management)** की शिक्षा देता है, जो सफलता के लिए अत्यावश्यक है।
- **भैक्षम् (भिक्षा-वृत्ति)** → यद्यपि आज विद्यार्थी भिक्षा नहीं माँगते, किन्तु इसका मूल भाव **'अहंकार-त्याग' एवं 'विनम्रता'** है। आधुनिक युग में छात्रवृत्ति (Scholarship), शैक्षिक ऋण, या अंशकालिक रोजगार इसका विकसित रूप समझा जा सकता है, जो छात्र को आर्थिक रूप से सरल एवं स्वावलम्बी बनाता है।
- **प्राणान्तिकी स्थितिः (गुरु-प्रति मृत्यु-पर्यन्त निष्ठा)** → आज के पेशेवर जगत में इसे **आजीवन मेंटरशिप (Lifelong Mentorship)** एवं **एलुमिनी-सम्बन्ध** के रूप में देखा जा सकता है। एक अच्छा शिक्षक या मार्गदर्शक (Coach/Mentor) छात्र के जीवन पर आजीवन अमिट प्रभाव छोड़ता है, और छात्र का गुरु-प्रति सम्मान एवं कृतज्ञता-भाव सदैव बना रहता है।

इस प्रकार ब्रह्मचारी-आश्रम के ये नियम कालातीत हैं; इन्हें आधुनिक शिक्षा-पद्धति में अनुकूलित करके अनुशासित, स्वस्थ एवं उच्च-नैतिक पीढ़ी का निर्माण किया जा सकता है।

श्लोक २३-२४ – गुरु-अनुपस्थिति एवं वेश

मूल संस्कृत श्लोक (२३)

तदभावे गुरुसुते तथा सब्रह्मचारिणि ।

कामतो वाश्रमान्यत्वं स्वधर्मो ब्रह्मचारिणः ॥२३॥

मूल संस्कृत श्लोक (२४)

समेखलो जटी मुण्डो दण्डी वा गुरुसंश्रयः ।

आ विद्याग्रहणाद्गच्छेत्कामतो वाश्रमान्तरम् ॥२४॥

IAST (लिप्यंतरण)

श्लोक २३

tadabhāve gurusute tathā sabrahmacāriṇi ।

kāmato vāśramānyatvaṃ svadharmo brahmacāriṇaḥ ॥23॥

श्लोक २४

samekhalo jaṭī muṇḍo daṇḍī vā gurusaṃśrayaḥ ।

ā vidyāgrahaṇād gacchet kāmato vāśramāntaram ॥24॥

शब्दार्थ (शब्द-कोश)

संस्कृत पद	**हिन्दी अर्थ**
तदभावे	गुरु के अभाव में / गुरु के न होने पर
गुरुसुते	गुरु-पुत्र के पास / गुरु के पुत्र की सेवा में
सब्रह्मचारिणि	सह-शिष्य (गुरु के अन्य शिष्य) के साथ
कामतः	इच्छा-वश / स्वेच्छा से
आश्रमान्यत्वम्	आश्रम-परिवर्तन (दूसरे आश्रम में प्रवेश)
स्वधर्मः	अपना धर्म / नित्य कर्तव्य
समेखलः	मेखला (यज्ञोपवीत/जनेऊ) सहित
जटी	जटा (मस्तक के उलझे हुए बाल) धारी
मुण्डः	मुण्डित (शिर मुंडन किए हुए)
दण्डी	दण्ड (हाथ में धारण किए जाने वाली छड़ी) धारी
गुरुसंश्रयः	गुरु के आश्रय में रहने वाला
आ विद्याग्रहणात्	विद्या-ग्रहण (शिक्षा प्राप्त करने) तक
आश्रमान्तरम्	दूसरा आश्रम (गृहस्थाश्रम)

भावार्थ (सारांश)

श्लोक २३ – गुरु-अनुपस्थिति में आचरण :यदि गुरु उपलब्ध न हों, तो ब्रह्मचारी को **गुरु-पुत्र** की अथवा **सह-शिष्यों** की सेवा एवं आज्ञा में रहना चाहिए। वह अपनी इच्छा-वश (कामतः) समय से पूर्व आश्रम-परिवर्तन (गृहस्थाश्रम में प्रवेश) न करे – यही ब्रह्मचारी का स्वधर्म है।

श्लोक २४ – ब्रह्मचारी का वेश एवं काल :ब्रह्मचारी **मेखला** (यज्ञोपवीत), **जटा** या **मुण्डन**, तथा **दण्ड** – इन चिह्नों के साथ **गुरु-आश्रित** रहे। उसे **विद्या-प्राप्ति** (शिक्षा पूर्ण होने) तक ही ब्रह्मचारी-आश्रम में रहना चाहिए; तत्पश्चात ही वह दूसरे आश्रम (गृहस्थ) में प्रवेश करे, वह भी इच्छा-वश नहीं, वरन् विधि-पूर्वक।

मूल संदेश (शासन-सूत्र)

1. **अनुशासन एवं संयम** – ब्रह्मचारी को गुरु-अनुपस्थिति में भी कर्तव्य-च्युत नहीं होना चाहिए; गुरु-पुत्र या सह-शिष्य का सान्निध्य भी उतना ही पवित्र है।
2. **आत्म-संयम (Indulgence का त्याग)** – 'कामतः आश्रमान्तरम्' का निषेध बताता है कि भौतिक सुखों (गृहस्थ-जीवन) में जल्दबाज़ी न करें; शिक्षा एवं चरित्र-निर्माण को प्राथमिकता दें।
3. **चिह्नात्मक अनुशासन** – वेश-भूषा (जटा/मुण्डन, दण्ड, मेखला) केवल बाहरी आडम्बर नहीं, बल्कि छात्र-जीवन की गंभीरता एवं साधना-अवस्था का स्मारक है।

4. **शिक्षा-पूर्णता का प्रतीक्षाकाल** – 'आ विद्याग्रहणात्' (जब तक विद्या पूर्ण न हो) स्पष्ट करता है कि शिक्षा के बिना जीवन के अगले पड़ाव में प्रवेश अधूरा एवं अनुचित है।

समसामयिक दृष्टिकोण (आधुनिक प्रासंगिकता)

आधुनिक मनोविज्ञान, शिक्षाशास्त्र एवं संस्थागत व्यवस्था में इस श्लोक-युग्म की अत्यन्त गहरी साम्यता है –

- **विलम्बित संतोष (Delayed Gratification)** – प्रसिद्ध **Stanford Marshmallow Experiment** (जहाँ बच्चों को एक मार्शमैलो अभी खाने या थोड़ी देर रुककर दो पाने के बीच चयन करना था) यही सिखाता है कि जो व्यक्ति तात्कालिक सुख (गृहस्थ-प्रवेश/विवाह/कमाई) का मोह त्यागकर शिक्षा एवं संयम पर ध्यान देते हैं, वे दीर्घकालिक रूप से अधिक सफल होते हैं। यही 'कामतः आश्रमान्यत्व' का निषेध है।

- **स्कूल-यूनिफॉर्म एवं अनुशासन-नियम (Uniforms & Discipline Codes)** – ब्रह्मचारी के **समेखल, जटी/मुण्ड, दण्ड** का आधुनिक समकक्ष विद्यालयों की निर्धारित वेश-भूषा, बाल-नियम, बैच एवं अनुशासन-पुस्तिकाएँ हैं। ये चिह्न विद्यार्थी-जीवन की साधना-अवस्था को स्मरण दिलाते हैं और एक समान वातावरण का सृजन करते हैं।

- **गुरु-तुल्य विकल्प (परामर्शदाता एवं वरिष्ठ)** – आज के विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में प्राचार्य, अध्यापक, वरिष्ठ छात्र एवं काउंसलर (जो 'गुरु-पुत्र' एवं 'सब्रह्मचारी' के आधुनिक रूप हैं) प्रमुख गुरु के अभाव में मार्गदर्शन का कार्य करते हैं।

- **शिक्षा-अधिकार एवं परिपक्वता (RTE & Legal Age for Adulthood)** – 'आ विद्याग्रहणात्' (विद्या-प्राप्ति तक) का सिद्धान्त आज की शिक्षा-नीति को प्रतिध्वनित करता है, जहाँ न्यूनतम शिक्षा (जैसे १४ वर्ष तक अनिवार्य शिक्षा) तथा विवाह की वैधानिक आयु (१८/२१ वर्ष) बौद्धिक एवं मानसिक परिपक्वता से पूर्व गृहस्थ-दायित्व ग्रहण करने पर रोक लगाती है।

इस प्रकार ये दोनों श्लोक ब्रह्मचर्य-आश्रम को केवल जीवन-योजना का प्रारम्भिक अध्याय ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण जीवन की **नींव-स्वरूप साधना-काल** घोषित करते हैं, जो आज के अत्यन्त प्रतिस्पर्धी युग में 'शिक्षा-पूर्णता एवं चरित्र-गठन' के अनमोल सूत्र के रूप में प्रासंगिक है।

श्लोक २५-२६ – गृहस्थ के कर्तव्य

श्लोक २५

मूल संस्कृत श्लोक

अग्निहोत्रोपचरणं जीवनं च स्वकर्मभिः ।

धर्मदारेषु कल्येषु पर्ववर्जं रतिक्रिया ॥२५॥

IAST (लिप्यंतरण)

agnihotropacaraṇaṃ jīvanaṃ ca svakarmabhiḥ /

dharmadāreṣu kalyeṣu parvavarjaṃ ratikriyā //25//

श्लोक २६

मूल संस्कृत श्लोक

देवपित्रतिथिभ्यश्च पूजा दीनानुकम्पनम् ।

श्रुतिस्मृत्यर्थसंस्थानं धर्मोऽयं गृहमेधिनः ॥२६॥

IAST (लिप्यंतरण)

devapitratithibhyaś ca pūjā dīnānukampanam ।

śrutismṛtyarthasaṃsthānaṃ dharmo 'yaṃ gṛhamedhinaḥ ॥26॥

शब्दार्थ (शब्द-कोश – दोनों श्लोकों का सम्मिलित)

संस्कृत पद	**हिन्दी अर्थ**
अग्निहोत्रोपचरणम्	अग्निहोत्र (वैदिक अग्नि-कर्म) का अनुष्ठान/निर्वाह
जीवनम्	जीविका / आजीविका / रोज़ी-रोटी
स्वकर्मभिः	अपने नियत कर्म / स्वाभाविक व्यवसाय के द्वारा
धर्मदारेषु	धर्म-पत्नी (विधिपूर्वक विवाहित स्त्री) में
कल्येषु	कल्याणकारी स्त्री / कुशल एवं सद्गुणी पत्नी के साथ
पर्ववर्जम्	पर्व (पर्व-दिवस / त्योहार / वैदिक वर्जित तिथियाँ) को छोड़कर
रतिक्रिया	संभोग / सहवास
देव	देवताओं की
पितृ	पितरों (पूर्वजों / मृतक पितृगण) की
अतिथि	अतिथियों (बिना बुलाए आने वाले मेहमान) की
पूजा	आदर-सत्कार / पूजन
दीनानुकम्पनम्	दीन-दुखियों (गरीब, असहाय, पीड़ित) पर दया करना / अनुकम्पा
श्रुतिस्मृति	श्रुति (वेद) एवं स्मृति (धर्म-शास्त्र)
अर्थसंस्थानम्	अर्थ-व्यवस्था का पालन / धन-संचय एवं उसका सदुपयोग
गृहमेधिनः	गृहस्थ (गृहस्थाश्रमी / परिवार-प्रधान पुरुष) का

भावार्थ (सारांश)

श्लोक २५ का भाव :गृहस्थ को चाहिए कि वह अग्निहोत्र आदि वैदिक कर्मों का नियमित पालन करे, अपने स्वाभाविक व्यवसाय (जैसे – ब्राह्मण के लिए पौरोहित्य, क्षत्रिय के लिए शासन, वैश्य के लिए व्यापार/कृषि) से अपनी जीविका चलाए, तथा अपनी धर्म-पत्नी के साथ ऋतुकाल (औचित्यपूर्ण समय) में ही संभोग करे, जिसमें पर्व-त्योहारों एवं वैदिक मर्यादा-विरुद्ध दिनों का परिहार करे।

श्लोक २६ का भाव :गृहस्थ के अन्य कर्तव्य हैं – देवताओं, पितरों और अतिथियों का सम्मान-सत्कार, दीन-दुखियों के प्रति दया एवं सहानुभूति, तथा श्रुति-स्मृति (वेद एवं धर्मशास्त्र) में वर्णित अर्थ-व्यवस्था (धनोपार्जन एवं उसके सद्व्यय) का पालन करना। यही समग्र रूप से **गृहस्थ का धर्म** कहलाता है।

मूल संदेश (शासन-सूत्र)

गृहस्थाश्रम को सभी आश्रमों का स्तम्भ माना गया है, क्योंकि यह समाज को आर्थिक उत्पादन, नैतिक संस्कार एवं सांस्कृतिक निरन्तरता प्रदान करता है। इसके चार प्रमुख आयाम हैं –

1. **आध्यात्मिक-नैतिक कर्तव्य** – अग्निहोत्र, देव-पितृ-पूजा।
2. **आर्थिक स्वावलम्बन** – स्व-कर्म से जीविका।
3. **सामाजिक उत्तरदायित्व** – अतिथि-सत्कार एवं दीन-अनुकम्पा।
4. **वैयक्तिक मर्यादा** – धर्म-पत्नी के प्रति संयमित सहवास (परिवार-नियोजन एवं शारीरिक-मानसिक स्वास्थ्य का आधार)।

इस प्रकार यह श्लोक-युग्म व्यक्ति, परिवार, समाज और ईश्वर – **चारों स्तरों पर गृहस्थ के कर्तव्यों** को सन्तुलित रूप से परिभाषित करता है।

समसामयिक दृष्टिकोण (आधुनिक प्रासंगिकता)

आज के संदर्भ में इस प्राचीन गृहस्थ-धर्म के तत्त्व अत्यन्त प्रासंगिक हैं –

- **अग्निहोत्र एवं स्वकर्म → कार्य-जीवन सन्तुलन (Work-Life Balance)** – नियमित आध्यात्मिक-मानसिक चिन्तन (माइण्डफुलनेस) के साथ-साथ अपने कौशल एवं व्यवसाय (स्वकर्म) से जीविका अर्जित करना ही आज की 'वर्क-लाइफ बैलेंस' की अवधारणा का आधार है।
- **पर्ववर्जं रतिक्रिया → परिवार-नियोजन (Family Planning) एवं स्वस्थ जीवन-शैली** – यह मर्यादित एवं ऋतु-अनुसार सहवास का विधान है, जो आज के यौन-शिक्षा, परिवार-नियोजन और सन्तुलित जनसंख्या-नीति के समतुल्य है।
- **दीनानुकम्पनम् → कल्याणकारी राज्य (Welfare State) एवं PM गरीब कल्याण (जैसे – PMGKAY, Antyodaya योजनाएँ)** – दीन-दुखियों पर दया का भाव आधुनिक राज्यों की सामाजिक सुरक्षा-योजनाओं, निःशुल्क राशन, आवास एवं स्वास्थ्य-बीमा योजनाओं के रूप में विकसित हुआ है।
- **अतिथि-पूजा → पर्यटन-सेवा एवं आतिथ्य-उद्योग (Hospitality Industry)** – जहाँ आधुनिक अतिथि-सत्कार व्यावसायिक रूप ले चुका है, वहीं संस्कृतिक आतिथ्य-भावना आज भी 'अतिथि देवो भवः' के रूप में भारतीय पर्यटन-नीति का केन्द्र-बिन्दु है।
- **श्रुति-स्मृत्यर्थसंस्थानम् → सतत् विकास एवं नैतिक अर्थशास्त्र (Ethical Economics)** – आज का 'सबका साथ, सबका विकास' एवं 'संयुक्त राष्ट्र SDG मॉडल' भी धनोपार्जन के साथ-साथ नैतिकता, पारदर्शिता एवं सामाजिक-पर्यावरणीय दायित्व पर बल देता है, जो इस प्राचीन 'अर्थसंस्थान' शब्द का ही विस्तार है।

इस प्रकार यह श्लोक-युग्म आधुनिक **परिवार-कल्याण, सामाजिक-सुरक्षा तथा नैतिक-आर्थिक-व्यवस्था** का समग्र दर्शन प्रस्तुत करता है।

श्लोक २७-२८ – वानप्रस्थ (वनवासी)

श्लोक २७

मूल संस्कृत श्लोक

जटित्वमग्निहोत्रित्वं भूशय्याजिनधारणम् ।

वनेवासः पयोमूलनीवारफलवृत्तिता ॥२७॥

IAST (लिप्यंतरण)

jaṭitvam agnihotritvaṃ bhūśayyājinadhāraṇam ।

vanevāsaḥ payomūlanīvāraphalavṛttitā ॥27॥

श्लोक २८

मूल संस्कृत श्लोक

प्रतिग्रहनिवृत्तिश्च त्रिःस्नानं व्रतचारिता ।

देवातिथीनां पूजा च धर्मोऽयं वनवासिनः ॥२८॥

IAST (लिप्यंतरण)

pratigrahanivṛttiś ca triḥsnānaṃ vratacāritā ।

devātithīnāṃ pūjā ca dharmo 'yaṃ vanavāsinaḥ ॥28॥

शब्दार्थ (शब्द-कोश – दोनों श्लोकों का सम्मिलित)

संस्कृत पद	**हिन्दी अर्थ**
जटित्वम्	जटा (उलझे हुए बाल) धारण करना
अग्निहोत्रित्वम्	अग्निहोत्र (वैदिक अग्नि-कर्म) का नित्य अनुष्ठान करना
भूशय्या	भूमि पर शयन करना (काष्ठ-तल्प / ज़मीन पर सोना)
अजिनधारणम्	मृगचर्म (हिरण या बाघ की खाल) धारण करना
वनेवासः	वन में निवास करना
पयः	दूध
मूल	जड़ें (कन्द-मूल, जैसे – आलू, अरबी, शकरकन्द आदि)
नीवार	जंगली चावल (वन्य धान / कुटकी-झंगोरा)
फल	वन्य-फल (जंगली फल, मेवे)

वृत्तिता	इन्हीं (दूध, जड़, चावल, फल) पर आहार-निर्वाह करना
प्रतिग्रहनिवृत्तिः	दान / भिक्षा / उपहार ग्रहण करने का सर्वथा त्याग
त्रिःस्नानम्	प्रातः, मध्याह्न एवं सायं – तीनों सन्ध्याओं पर स्नान
व्रतचारिता	व्रतों (उपवास, संयम, नियम-निष्ठाओं) का आचरण / पालन
देवातिथीनाम्	देवताओं (वैदिक देवता) और अतिथियों की
पूजा	पूजन / आदर-सत्कार / अर्चना
वनवासिनः	वनवासी (वानप्रस्थ-आश्रमी) का

भावार्थ (सारांश)

श्लोक २७ का भाव :वानप्रस्थ (वनवासी) आश्रम में प्रवेश करने पर व्यक्ति को जटा धारण करनी चाहिए, अग्निहोत्र का नियमित अनुष्ठान करना चाहिए, भूमि पर शयन करना चाहिए, तथा मृगचर्म (वल्कल/खाल) को धारण करना चाहिए। उसे वन में ही निवास करना होता है तथा उसका आहार केवल वन-प्राप्त दूध, जड़-कन्द, जंगली चावल (नीवार) और वन्य-फलों पर ही निर्भर करना चाहिए।

श्लोक २८ का भाव :साथ ही, वानप्रस्थी को दान-ग्रहण (परोपकार की वस्तुएँ लेना) का सर्वथा त्याग कर देना चाहिए, प्रतिदिन तीन बार (प्रातः, मध्याह्न, सायं) स्नान करना चाहिए, विभिन्न व्रतों (संयम-नियमों) का पालन करना चाहिए, तथा देवताओं और अतिथियों का विधिपूर्वक पूजन करना चाहिए। यह सब समग्र रूप से **वनवासी (वानप्रस्थ) का धर्म** कहलाता है।

मूल संदेश (शासन-सूत्र)

वानप्रस्थाश्रम गृहस्थ और संन्यास के मध्य का सेतु है। यह **'सुख-साधनों के त्याग' एवं 'आत्म-संयम की साधना'** का प्रतीक है। इसके माध्यम से चार महत्वपूर्ण जीवन-सूत्र प्राप्त होते हैं –

1. **इन्द्रिय-निग्रह एवं संयम** – भूमि-शय्या, जटा-धारण, नियमित स्नान, व्रत-आचरण।
2. **आधिभौतिक निर्लेपता** – दान-ग्रहण का त्याग, सरलतम वन्य-आहार, भौतिक सुखों से विरक्ति।
3. **प्रकृति-सान्निध्य एवं स्वावलम्बन** – वन-वास, प्राकृतिक संसाधनों (फल-मूल-दूध) पर निर्भरता।
4. **आध्यात्मिक-सामाजिक उत्तरदायित्व** – अग्निहोत्र, देव-पूजा, अतिथि-सत्कार – ये सिद्ध करते हैं कि वन में भी सामाजिक एवं आध्यात्मिक कर्तव्यों का परित्याग नहीं होता।

यह आश्रम उस व्यक्ति के लिए है, जिसने जीवन के भौतिक ऋण (कुटुम्ब-दायित्व) चुका दिए हैं और अब मोक्ष-साधना के लिए विन्यस्त होता है।

समसामयिक दृष्टिकोण (आधुनिक प्रासंगिकता)

आज के उपभोक्तावादी एवं प्रदूषित युग में वानप्रस्थ के ये सिद्धान्त अत्यन्त अग्रगामी एवं उपयोगी हैं –

- **हरित जीवन (Green Living)** – वन-वास, प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग, स्थानीय एवं मौसमी भोजन – यह आधुनिक 'पर्यावरण-संरक्षण', 'वनीकरण' एवं 'कार्बन-फुटप्रिन्ट न्यूनीकरण' के आन्दोलनों से पूर्णतः मेल खाता है।

- **जैविक भोजन (Organic Food) एवं स्थानीय खाद्य-प्रणाली** – पयः (दूध), मूल (जड़ें), नीवार (जंगली चावल), फल – यह आज के 'माइल्ड-फूड मूवमेंट', 'जीरो-बजट प्राकृतिक खेती' (ZBNF) तथा 'ऑर्गेनिक फार्मिंग' का ही प्रतिबिम्ब है।

- **अल्प-व्यय एवं सुव्यवस्थित जीवन (Minimalism)** – भूमि-शय्या, मृगचर्म, सीमित-अल्पाहार – यह आज की 'मिनिमलिज्म' और 'डिक्लटरिंग' अवधारणा (जापानी मर्यादा - मैरी कोंडो पद्धति) का प्राचीन स्वरूप है, जो भौतिक वस्तुओं के अतिसंचय को नकारता है।

- **मन्द-जीवन शैली (Slow Living)** – त्रि-स्नान, व्रत-आचरण, देव-अतिथि-पूजा – यह आधुनिक 'माइण्डफुलनेस', 'योग-ध्यान' एवं 'धीमे जीवन' (Slow Life) से तुलनीय है, जो मानसिक स्वास्थ्य एवं आत्म-साक्षात्कार पर बल देता है।

- **वरिष्ठ-नागरिक योजनाएँ (Senior Citizen Schemes)** – वानप्रस्थ का समकालीन रूप **राष्ट्रीय पेंशन प्रणाली (NPS)** एवं **वरिष्ठ-नागरिक बचत योजना (SCSS)** के अन्तर्गत सेवानिवृत्ति के बाद के जीवन में सादगी, स्वावलम्बन एवं नियमित आध्यात्मिक-सामाजिक गतिविधियों के रूप में देखा जा सकता है। जहाँ व्यक्ति वाणिज्यिक-संचय से निवृत्त होकर सामाजिक-आध्यात्मिक उपयोगिता की ओर बढ़ता है, वही इस आश्रम का मूल स्वरूप है।

इस प्रकार वानप्रस्थ केवल ऐतिहासिक जीवन-पद्धति नहीं, वरन् **सतत् विकास (SDG – विशेषतः SDG 12 उपभोग एवं उत्पादन), मानसिक-शारीरिक स्वास्थ्य तथा सेवानिवृत्ति-पश्चात् सार्थक जीवन** का सर्वोत्कृष्ट आदर्श है।

श्लोक २९-३१ – संन्यास : पाँच-स्तंभ एवं योग

श्लोक २९

मूल संस्कृत श्लोक

सर्वारम्भपरित्यागो भैक्षाश्यं वृक्षमूलिता ।

निष्परिग्रहताद्रोहः समता सर्वजन्तुषु ॥२९॥

IAST (लिप्यंतरण)

sarvārambhaparityāgo bhaikṣāśyaṃ vṛkṣamūlitā ।

niṣparigrahatādrohaḥ samatā sarvajantuṣu ॥29॥

श्लोक ३०

मूल संस्कृत श्लोक

प्रियाप्रियापरिष्वङ्गः सुखदुःखाविकारिता ।

सबाह्याभ्यन्तरं शौचं वाग्यमो व्रतचारिता ॥३०॥

IAST (लिप्यंतरण)

priyāpriyāpariṣvaṅgaḥ sukhaduḥkhāvikāritā ।

sabāhyābhyantaraṃ śaucaṃ vāgyamo vratacāritā ॥30॥

श्लोक ३१

मूल संस्कृत श्लोक

सर्वेन्द्रियसमाहारो धारणा ध्यानयुक्तता ।

भावसंशुद्धिरित्येष परिव्राड्धर्म उच्यते ॥३१॥

IAST (लिप्यंतरण)

sarvendriyasamāhāro dhāraṇā dhyānayuktatā ।

bhāvasaṃśuddhir ity eṣa parivrāḍdharma ucyate ॥31॥

शब्दार्थ (शब्द-कोश – तीनों श्लोकों का सम्मिलित)

संस्कृत पद	हिन्दी अर्थ
सर्वारम्भपरित्यागः	सभी प्रकार के कर्मकाण्डों, आरम्भों एवं उपादानों का सर्वथा त्याग
भैक्षाश्यम्	भिक्षा-आहार / भिक्षा माँगकर प्राप्त किया गया अन्न
वृक्षमूलिता	वृक्ष के नीचे (स्थायी आवास के बिना) रहना
निष्परिग्रहता	अपरिग्रह – किसी भी प्रकार के संग्रह, भण्डारण एवं स्वामित्व-भाव का त्याग
अद्रोहः	अद्रोह / किसी भी प्राणी के प्रति द्वेष या पीड़ा-बुद्धि का अभाव
समता	सभी प्राणियों (जन्तुओं) में समभाव / एकरूप दृष्टि
प्रियाप्रियापरिष्वङ्गः	प्रिय-अप्रिय वस्तुओं (राग-द्वेष) का परित्याग / उनमें आसक्ति न रखना
सुखदुःखाविकारिता	सुख-दुःख में मन का अविकार / हर्ष-शोक में स्थिरता
सबाह्याभ्यन्तरम्	बाह्य (शरीर, वस्त्र, स्थान) तथा आभ्यन्तर (मन, बुद्धि) – दोनों प्रकार की
शौचम्	पवित्रता / स्वच्छता / शुद्धता
वाग्यमः	वाणी पर नियंत्रण / मितभाषिता एवं सत्य-भाषण
व्रतचारिता	व्रतों (नियमों / प्रतिज्ञाओं) का आचरण / पालन
सर्वेन्द्रियसमाहारः	सभी इन्द्रियों का संयम (योग में प्रत्याहार)
धारणा	धारणा – मन को एक बिन्दु (वस्तु/तत्त्व) पर स्थिर करना
ध्यानयुक्तता	ध्यान में निष्ठा / अविचल चिन्तन
भावसंशुद्धिः	भावों (वृत्तियों, संस्कारों) की पूर्ण शुद्धि
परिव्राड्धर्मः	परिव्राजक (संन्यासी) का धर्म कहलाता है

भावार्थ (सारांश)

इन तीन श्लोकों में **संन्यास-धर्म** के समग्र स्वरूप को स्पष्ट किया गया है –

संन्यासी का पहला लक्षण है – **बाह्य त्याग** – सभी कर्मकाण्डों, भौतिक आरम्भों, संग्रह, स्थायी निवास एवं नियमित भोजन-व्यवस्था का पूर्णतया परित्याग। वह वृक्ष-मूल में निवास करता है, भिक्षा से जीवन निर्वाह करता है और अपरिग्रह का पालन करता है।

दूसरा लक्षण है – **आन्तरिक नैतिकता एवं समता** – सब प्राणियों के प्रति अहिंसा, अद्रोह एवं समभाव; प्रिय-अप्रिय, सुख-दुःख, मान-अपमान में मन की स्थिरता; तथा बाह्य-आभ्यन्तर शौच, वाणी-निग्रह और व्रत-पालन।

तीसरा लक्षण है – **योग-साधना** – इन्द्रिय-संयम (प्रत्याहार), धारणा, ध्यान और अन्ततः भाव-संशुद्धि (अन्तर्मन की पूर्ण निर्मलता)।

ये सभी एक साथ **परिव्राजक / संन्यासी का धर्म** कहलाते हैं।

मूल संदेश (शासन-सूत्र)

संन्यास केवल वस्त्र-त्याग या संसार-पलायन नहीं है, वरन् **पाँच स्तंभों** पर आधारित जीवन-पद्धति है –

१. **भौतिक अनासक्ति** (अपरिग्रह, भिक्षा, वृक्ष-मूल) – बाह्य वस्तुओं से मोह-मुक्ति।
२. **आहार-विहार-संयम** (भैक्षाश्य, व्रत, शौच) – शरीर-मन की शुद्धि।
३. **सार्वभौमिक अहिंसा एवं समता** (अद्रोह, समता) – करुणा एवं विश्व-बन्धुत्व।
४. **राग-द्वेष एवं हर्ष-शोक पर विजय** (प्रियाप्रिय-त्याग, अविकारिता) – मानसिक स्थिरता।
५. **योग-साधना** (प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, भाव-शुद्धि) – आत्म-साक्षात्कार का मार्ग।

यही वह परम साधना है जो मनुष्य को संसार-बन्धनों से मुक्त कर चेतना की परम-उच्च अवस्था में स्थापित करती है।

समसामयिक दृष्टिकोण (आधुनिक प्रासंगिकता)

आज के अत्यधिक उपभोक्तावादी, भागदौड़-भरे एवं तनावपूर्ण जीवन में ये प्राचीन संन्यास-सूत्र नए अर्थों में प्रासंगिक हैं –

- **सर्वारम्भ-परित्याग एवं निष्परिग्रहता → न्यूनतमवाद (Minimalism)** – आज पश्चिमी देशों में तथा भारत के युवाओं में 'मिनिमलिस्ट' जीवन-शैली का चलन है – जहाँ अनावश्यक वस्तुओं, डिजिटल अव्यवस्था एवं भावनात्मक कचरे को त्यागकर केवल आवश्यक पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है।

- **अद्रोह एवं समता → गाँधी जी का ग्यारहवाँ व्रत** – महात्मा गाँधी ने 'अपरिग्रह', 'अहिंसा', 'समता' और 'स्वदेशी' को अपने सत्याग्रह-आन्दोलन का आधार बनाया। वे इसी भाव-संशुद्धि के व्यावहारिक उदाहरण थे।

- **प्रियाप्रिय-त्याग एवं सुख-दुःख-अविकारिता → माइण्डफुलनेस (Mindfulness) एवं संज्ञानात्मक व्यवहार थेरेपी (CBT)** – आधुनिक मनोविज्ञान भावनात्मक उत्तेजनाओं (राग-द्वेष, हर्ष-शोक) से स्थिर रहने के लिए माइण्डफुलनेस एवं CBT तकनीकों पर बल देता है, जो इसी 'अविकारिता' का पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक रूप है।

- **धारणा-ध्यान → प्रवाह-स्थिति (Flow-State) एवं ध्यान-अनुप्रयोग (Meditation Apps)** – विकासवादी मनोविज्ञान में 'फ्लो स्टेट' (पूर्ण एकाग्रता) को उच्चतम उत्पादकता एवं आनन्द की अवस्था माना गया है, जो

'धारणा' का ही आधुनिक रूप है। साथ ही, Headspace, Calm, आदि ध्यान-अनुप्रयोग आज लाखों लोगों को संयम, ध्यान एवं भाव-शुद्धि के इसी पथ पर अग्रसर कर रहे हैं।

- **भावसंशुद्धि → आन्तरिक सशक्तिकरण (Inner Engineering)** – सद्गुरु, श्री श्री रविशंकर आदि आधुनिक आध्यात्मिक गुरुओं का 'आन्तरिक सुख' एवं 'मानसिक स्वास्थ्य' पर बल भी इसी भाव-संशुद्धि को वैश्विक पटल पर स्थापित कर रहा है।

इस प्रकार यह श्लोक-त्रयी सिखाती है कि सच्चा संन्यास भौतिक सुख-सुविधाओं का बाह्य त्याग न होकर, आन्तरिक वासनाओं, राग-द्वेष और विकृत भावनाओं का त्याग है – जो आज के मानसिक स्वास्थ्य एवं सार्थक जीवन-शैली का सबसे बड़ा आधार है।

श्लोक ३२ – सार्वभौमिक-धर्म

मूल संस्कृत श्लोक

अहिंसा सूनृता वाणी सत्यं शौचं दया क्षमा ।

वर्णिनां लिङ्गिनां चैव सामान्यो धर्म उच्यते ॥३२॥

IAST (लिप्यंतरण)

ahiṃsā sūnṛtā vāṇī satyaṃ śaucaṃ dayā kṣamā ।

vaṃinām liṅginām caiva sāmānyo dharma ucyate ॥32॥

शब्दार्थ (शब्द-कोश)

संस्कृत पद	हिन्दी अर्थ
अहिंसा	अहिंसा / किसी भी प्राणी को मानसिक, वाचिक या शारीरिक पीड़ा न देना
सूनृता	मधुर एवं कल्याणकारी
वाणी	वाणी / बोली / कथन
सत्यम्	सत्य / यथार्थ / ऋत-भाषण
शौचम्	शौच / आन्तरिक एवं बाह्य पवित्रता (शारीरिक-मानसिक स्वच्छता)
दया	दया / सर्व-प्राणियों के प्रति करुणा
क्षमा	क्षमा / अपराधियों एवं शत्रुओं को भी क्षमा करने की वृत्ति
वर्णिनाम्	सभी वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) के लिए
लिङ्गिनाम्	सभी आश्रमों (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास – जिनके विशिष्ट चिह्न/लिङ्ग होते हैं) के लिए
सामान्यः	सामान्य / समान / सार्वभौमिक
धर्मः	धर्म / आचार-संहिता / कर्तव्य-मर्यादा

उच्यते	कहलाता है / विधान किया जाता है

भावार्थ (सारांश)

अहिंसा, मधुर-कल्याणकारी वाणी, सत्य, शौच (पवित्रता), दया और क्षमा – ये छः गुण सभी **वर्णों** (समाज के चारों वर्गों) और सभी **आश्रमों** (जीवन के चारों पड़ावों) के लिए **समान रूप से सार्वभौमिक धर्म** हैं। अर्थात् विशिष्ट वर्ण-धर्म (व्यवसाय-आधारित कर्तव्य) और आश्रम-धर्म (आयु-आधारित कर्तव्य) भिन्न-भिन्न हो सकते हैं, किन्तु ये छः आधारभूत नैतिक गुण **सबके लिए समान एवं अनिवार्य** हैं।

मूल संदेश (शासन-सूत्र)

यह श्लोक वर्ण-व्यवस्था एवं आश्रम-व्यवस्था का **नैतिक सार** प्रस्तुत करता है –

1. **भेदों से ऊपर उठकर समान मानवीय आधार** – चाहे कोई शिक्षक हो, शासक हो, व्यापारी हो या सेवक; चाहे कोई विद्यार्थी हो, गृहस्थ हो, वानप्रस्थी हो या संन्यासी – इन छः सद्गुणों का पालन सब पर समान रूप से लागू होता है।

2. **व्यावहारिक नैतिकता** – ये केवल सैद्धांतिक नहीं, अपितु रोजमर्रा के आचरण में अपनाने योग्य गुण हैं – वाणी में माधुर्य, मन में दया, कर्म में अहिंसा, सम्बन्धों में क्षमा, जीवन में शौच और वचन में सत्य।

3. **सामाजिक सद्भाव** – जब कोई समाज इन छः गुणों पर टिका होता है, तो वहाँ अनावश्यक हिंसा, झूठ, अशुद्धि, निष्ठुरता और द्वेष का कोई स्थान नहीं रहता।

समसामयिक दृष्टिकोण (आधुनिक प्रासंगिकता)

आज के वैश्विक सन्दर्भ में यह श्लोक विश्व-शान्ति, मानवाधिकार एवं सामाजिक न्याय का **मूल-मन्त्र** है –

- **अहिंसा → SDG-16 (शान्ति, न्याय एवं सशक्त संस्थाएँ)** एवं **महात्मा गांधी का सत्याग्रह-अहिंसा आन्दोलन** – संयुक्त राष्ट्र द्वारा भी अहिंसा और सहिष्णुता को सतत् विकास एवं वैश्विक शान्ति का आधार माना गया है। गाँधीजी ने इन्हीं छः गुणों को अपने राजनीतिक एवं सामाजिक आन्दोलनों का केन्द्र-बिन्दु बनाया।

- **सत्य एवं मधुर वाणी → मानव-अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा (UDHR 1948)** – जहाँ प्रत्येक व्यक्ति को अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता दी गई है, वहीं यह उत्तरदायित्व भी है कि वाणी मधुर, संयत एवं सत्यनिष्ठ हो – जो आज 'फेक न्यूज़' एवं 'हैट स्पीच' के युग में अत्यन्त प्रासंगिक है।

- **शौच → SDG-6 (स्वच्छ जल एवं स्वच्छता) एवं व्यक्तिगत-सार्वजनिक स्वच्छता अभियान (जैसे – स्वच्छ भारत मिशन)** – आन्तरिक और बाह्य पवित्रता अब वैश्विक-स्वास्थ्य एजेंडा का महत्वपूर्ण अंग बन चुकी है।

- **दया एवं क्षमा → सामाजिक-न्याय, मानवीय सहायता (Humanitarian Aid) एवं पुनर्वास-नीतियाँ** – आधुनिक विधि-व्यवस्था में दण्ड के साथ-साथ अपराधियों के सुधार, बंदियों की दया-याचिका एवं सामाजिक पुनर्वास की प्रक्रियाएँ इसी 'क्षमा' और 'दया' के विस्तारित रूप हैं।

इस प्रकार यह श्लोक समस्त मानवता के लिए **कालातीत एवं सार्वदेशिक आचार-संहिता** है, जो जाति, वर्ग, आयु अथवा पद के भेद से परे जाकर केवल 'मानव' होने के आधार पर नैतिक जीवन-पद्धति का निर्देश देता है।

श्लोक ३३-३५ – धर्म-पालन एवं आदर्श राजा

श्लोक ३३

मूल संस्कृत श्लोक

स्वर्गानन्त्याय धर्मोऽयं सर्वेषां वर्णिलिङ्गिनाम् ।

तस्याभावे तु लोकोऽयं सङ्करान्नाशमाप्नुयात् ॥३३॥

IAST (लिप्यंतरण)

svargānantyāya dharmo 'yaṃ sarveṣāṃ vaṃiliṅginām ।

tasyābhāve tu loko 'yaṃ saṅkarān nāśam āpnuyāt ॥33॥

श्लोक ३४

मूल संस्कृत श्लोक

सर्वस्यास्य यथान्यायं भूपतिः सम्प्रवर्तकः ।

तस्याभावे धर्मनाशस्तदभावे जगच्च्युतिः ॥३४॥

IAST (लिप्यंतरण)

sarvasyāsya yathānyāyaṃ bhūpatiḥ sampravartakaḥ ।

tasyābhāve dharmanāśas tadabhāve jagaccyutiḥ ॥34॥

श्लोक ३५

मूल संस्कृत श्लोक

वर्णाश्रमाचारयुतो वर्णाश्रमविभागवित् ।

पाता वर्णाश्रमाणां च पार्थिवः सर्वलोकभाक् ॥३५॥

IAST (लिप्यंतरण)

vaṃāśramācārayuto vaṃāśramavibhāgavit ।

pātā vaṃāśramāṇāṃ ca pārthivaḥ sarvalokabhāk ॥35॥

शब्दार्थ (शब्द-कोश – तीनों श्लोकों का सम्मिलित)

संस्कृत पद	**हिन्दी अर्थ**
स्वर्गानन्त्याय	स्वर्ग (इहलोक-परलोक) एवं शाश्वत-कल्याण के लिए
धर्मः	धर्म (आचार-संहिता / कर्तव्य-मार्ग)
वर्णिलिङ्गिनाम्	वर्णों (चार वर्ग) एवं आश्रमों (चार जीवन-पड़ाव) के लिए

तस्याभावे	उस (धर्म) के अभाव में
सङ्करात्	वर्ण-संकर / अराजकता / व्यवस्था-विघटन के कारण
नाशम्	विनाश / पतन
आप्नुयात्	प्राप्त होता है / हो जाता है
सर्वस्य	इस सब (वर्ण-आश्रम-व्यवस्था) का
यथान्यायम्	न्याय के अनुसार / विधि-सम्मत
भूपतिः	राजा / शासक
सम्प्रवर्तकः	प्रवर्तक / संचालक / प्रणेता
धर्मनाशः	धर्म का नाश / कर्तव्य-व्यवस्था का पतन
जगच्च्युतिः	जगत् का पतन / समाज-संसार का विनाश
वर्णाश्रमाचारयुतः	वर्ण और आश्रम के आचार-नियमों से युक्त
विभागवित्	वर्ण-आश्रम के विभाग-व्यवस्था का ज्ञाता / विशेषज्ञ
पाता	रक्षक / संरक्षक / पालन-पोषण करने वाला
पार्थिवः	राजा / पृथ्वी-पति
सर्वलोकभाक्	समस्त लोकों का अधिकारी / सर्व-लोक का भागीदार एवं स्वामी

भावार्थ (सारांश)

श्लोक ३३ – वर्णों एवं आश्रमों के जनकल्याण-हेतु यह धर्म-व्यवस्था सबके लिए स्वर्ग (शाश्वत-कल्याण) प्रदान करती है। यदि इस धर्म-व्यवस्था का अभाव हो जाए, तो यह समाज अराजकता एवं वर्ण-संकर (व्यवस्था-विघटन) के कारण नाश को प्राप्त हो जाता है।

श्लोक ३४ – राजा इस सम्पूर्ण वर्ण-आश्रम-व्यवस्था का **न्याय-अनुसार प्रवर्तक** है। यदि राजा न हो (अर्थात् सुशासन का अभाव हो), तो धर्म का नाश होता है, और धर्म-नाश होने पर सम्पूर्ण जगत् (संसार/समाज) का पतन निश्चित है।

श्लोक ३५ – आदर्श राजा वह है, जो **वर्ण-आश्रम-आचार से युक्त** हो, उसके विभाग-व्यवस्था को **सम्यक् जानता** हो, तथा इन सबका **रक्षक** हो। तभी वह राजा **समस्त लोकों (विश्व/राज्य) का अधिकारी एवं भागीदार** बनता है।

मूल संदेश (शासन-सूत्र)

इन तीन श्लोकों में **सुशासन, राजा और समाज-व्यवस्था** का अटूट सम्बन्ध स्थापित किया गया है –

1. **धर्म → समाज-बन्धन** – धर्म (आचार-कर्तव्य-व्यवस्था) ही समाज को अराजकता से बचाता है। यह सामाजिक जीवन का अमृत-तुल्य बन्धन है।
2. **राजा → धर्म-प्रवर्तक** – राजा केवल कर-वसूली का अधिकारी नहीं, वरन् **न्यायपूर्वक धर्म-व्यवस्था का संचालक** है। राजा का वास्तविक कर्तव्य धर्म-रक्षा है, न कि मनमाना शासन।

3. **राजा-अभाव → विनाश** – राज-सत्ता के दुरुपयोग अथवा अनुपस्थिति से धर्म-नाश होता है, जिसका परिणाम समाज का पूर्ण पतन होता है।

4. **आदर्श-राजा → सर्वलोक-अधिकारी** – केवल वही राजा सम्पूर्ण राज्य का अधिकारी बन सकता है, जो स्वयं आचार-युक्त हो, व्यवस्था-ज्ञाता हो, और संरक्षक हो।

समसामयिक दृष्टिकोण (आधुनिक प्रासंगिकता)

आधुनिक वैश्विक एवं राष्ट्रीय इतिहास इस श्लोक-त्रयी के सिद्धान्त को चरितार्थ करता है –

- **रोमन-साम्राज्य का पतन (Fall of Roman Empire)** – जब रोमन साम्राज्य में नैतिक-अर्थिक-शासन-व्यवस्था कमजोर पड़ी और आपसी संघर्ष बढ़ा (सङ्कर-स्थिति), तो विशाल साम्राज्य धीरे-धीरे नष्ट हो गया। यह **'धर्म-अभाव → विनाश'** का ऐतिहासिक प्रमाण है।

- **असफल-राज्य (Failed States)** – आधुनिक युग के **सोमालिया** एवं **सीरिया** जैसे देशों में गृह-युद्ध, अराजकता, और सशक्त-केन्द्रीय-शासन (राजा-प्रवर्तक) के अभाव ने जनता को अकाल, विस्थापन एवं मानवीय-संकट में डाल दिया। यह **'तस्याभावे → धर्मनाशः → जगच्च्युतिः'** का समसामयिक स्वरूप है।

- **ली कुआन यू (सिंगापुर)** – सिंगापुर के संस्थापक ने एक मजबूत, न्याय-प्रधान, यथान्याय प्रवर्तक एवं आचार-युक्त शासन-व्यवस्था (वर्णाश्रमाचारयुत) स्थापित करके एक दरिद्र द्वीप-राष्ट्र को विश्व-स्तरीय अर्थव्यवस्था में परिवर्तित किया। यह **आदर्श-राजा** (सुशासक) का आधुनिक उदाहरण है।

- **सरदार वल्लभभाई पटेल** – भारत के 'लौह-पुरुष' ने देशी-रियासतों का एकीकरण करके विघटन-रोधी संरक्षक (पाता) की भूमिका निभाई। उनके प्रयासों ने भारत को 'सङ्कर' (बिखराव) एवं विनाश से बचाया, और 'सर्वलोकभाक्' (एकीकृत भारत) का मार्ग प्रशस्त किया।

वर्णाश्रम – सारांश

- चार वर्ण – **गुण-एवं-कर्म-आधारित** (जन्मगत नहीं)।
- **ब्रह्मचर्य** (शिक्षा-काल), **गृहस्थ** (परिवार-पालन), **वानप्रस्थ** (सेवानिवृत्ति), **संन्यास** (मोक्ष-साधना) – चार आश्रम।
- **सार्वभौमिक-धर्म** – अहिंसा, सत्य, दया, क्षमा – सभी वर्ण-आश्रमों के लिए समान।
- **राजा** – प्रवर्तक एवं रक्षक; **यथान्याय** (न्याय-विधान) के अधीन।

दण्डमाहात्म्यप्रकरणम् (श्लोक ३६-४४)

प्रकरण-परिचय: इस अन्तिम प्रकरण में दण्ड-व्यवस्था की अनिवार्यता, सन्तुलन, और अभाव में उत्पन्न होने वाली अराजकता (मात्स्य-न्याय) का विवेचन है। 'युक्त-दण्ड' (अपराधानुरूप) एवं 'अनुद्वेजन-दण्ड' (भय-रहित-अनुशासन) का सिद्धान्त आधुनिक Proportionate Sentencing एवं Reformative Justice से तुलनीय है।

श्लोक ३६ – आत्म-संयम एवं यम-तुल्य-दण्ड

मूल संस्कृत श्लोक

इति यस्मादुभौ लोकौ धारयत्यात्मवान्नृपः ।

प्रजानां च ततः सम्यग्दण्डं दण्डीव धारयेत् ॥३६॥

IAST (लिप्यंतरण)

iti yasmād ubhau lokau dhārayaty ātmavān nṛpaḥ ।

prajānāṃ ca tataḥ samyag daṇḍaṃ daṇḍīva dhārayet ॥36॥

शब्दार्थ (शब्द-कोश)

संस्कृत पद	**हिन्दी अर्थ**
यस्मात्	क्योंकि / जिस कारण
आत्मवान्	आत्म-संयमी / स्वयं पर नियन्त्रण रखने वाला
नृपः	राजा / शासक
उभौ लोकौ	दोनों लोक – इहलोक (भौतिक जगत) एवं परलोक (आध्यात्मिक एवं नैतिक व्यवस्था)
धारयति	धारण करता है / सुसंगत रखता है
प्रजानाम्	प्रजा के लिए
ततः	इसलिए / तदनुसार
सम्यक्	सम्यक् / उचित / न्यायोचित / यथावत्
दण्डम्	दण्ड (शासन-शक्ति / दण्ड-व्यवस्था)
दण्डीव	**यमराज** (दण्डधर) के समान
धारयेत्	धारण करे / प्रयोग करे

भावार्थ (सारांश)

क्योंकि आत्म-संयमी राजा ही इस लोक (सांसारिक व्यवस्था) और परलोक (नैतिक-आध्यात्मिक व्यवस्था) – **दोनों को सुचारु रूप से धारण** कर सकता है, इसलिए वह **प्रजा के हित** के लिए **न्यायोचित एवं निष्पक्ष दण्ड-शक्ति** का प्रयोग करे, और वह इस प्रयोग में **यमराज के समान** निर्भीक, न्यायप्रिय एवं अप्रमत्त हो।

यहाँ स्पष्ट किया गया है कि **आत्म-संयम** ही दण्ड-धारण की प्रथम एवं अनिवार्य शर्त है – बिना आत्म-नियंत्रण के दण्ड अत्याचार बन जाता है।

मूल संदेश (शासन-सूत्र)

इस श्लोक से चार महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त निष्पन्न होते हैं –

1. **आत्म-संयम → शासन का आधार** – जो राजा स्वयं अपनी इन्द्रियों, क्रोध, लोभ एवं आवेगों पर विजयी नहीं, वह दूसरों पर न्याय नहीं कर सकता। आत्म-विजय के बिना दण्डनीति नीति नहीं, बल्कि मनमानी बन जाती है।
2. **यम-सादृश्य (Yama-tulya)** – यमराज सभी प्राणियों के प्रति समान दृष्टि रखते हैं; वे किसी का पक्ष-विपक्ष नहीं करते। इसी प्रकार राजा का दण्ड भी **राग-द्वेष से रहित**, **निष्पक्ष** एवं **अपरिवर्तनीय** होना चाहिए।

3. **इह-परलोक का सामंजस्य** – न्याय-व्यवस्था केवल इस लोक की व्यवस्था के लिए नहीं, वरन् समाज के नैतिक-आध्यात्मिक उत्थान (परलोक) के लिए भी उत्तरदायी है। एक न्यायपूर्ण दण्ड ही समाज में धर्म की स्थापना करता है।

4. **दण्ड का उद्देश्य – प्रजा-हित** – दण्ड प्रतिशोध या दमन के लिए नहीं, वरन् **प्रजा के कल्याण, सुरक्षा एवं शासन-व्यवस्था** की रक्षा के लिए है।

समसामयिक दृष्टिकोण (आधुनिक प्रासंगिकता)

आधुनिक लोकतांत्रिक व्यवस्था में इस श्लोक की प्रासंगिकता अत्यन्त गहरी है –

- **विधि-शासन (Rule of Law)** – 'सम्यग्दण्ड' का अर्थ है 'विधि का शासन', न कि 'शासक का शासन'। आज का संविधानवाद (Constitutionalism) इसी सिद्धान्त पर टिका है कि दण्ड-शक्ति **संविधान एवं विधि-नियमों** से बद्ध हो, न कि शासक की इच्छा से।

- **निर्भीक एवं निष्पक्ष न्यायपालिका (Independent Judiciary)** – यमराज का सादृश्य आज **स्वतन्त्र, निष्पक्ष एवं साहसी न्यायाधीशों** से लिया जा सकता है, जो जन-आन्दोलन, सत्ता-दबाव अथवा जन-मानस से प्रभावित हुए बिना केवल **तथ्य एवं विधि** के आधार पर निर्णय देते हैं।

- **आत्म-संयम → शक्तियों का पृथक्करण एवं नियन्त्रण (Checks and Balances)** – कार्यपालिका, विधायिका एवं न्यायपालिका के मध्य संतुलन ही आधुनिक राज्यों में 'आत्म-संयम' का सांस्थागत रूप है। शासकों एवं अधिकारियों पर **नैतिक-कानूनी अंकुश** ही उन्हें यमराज-तुल्य बनाता है।

- **दण्ड-सुधार एवं मानवाधिकार** – 'प्रजानां च ततः सम्यग्दण्डम्' यह भी बताता है कि दण्ड **अनुपातिक (Proportionate)** होना चाहिए, अत्यधिक कठोर नहीं। आज के दण्ड-प्रक्रिया संहिता, मानवाधिकार-पत्र (Human Rights Charter) एवं सुधारात्मक न्याय (Restorative Justice) की अवधारणाएँ भी इसी 'सम्यक्' (न्यायोचित) दण्ड की परिकल्पना करती हैं।

- **पुलिस सुधार एवं शासकीय जवाबदेही** – आज 'पुलिस-अत्याचार' एवं 'मुठभेड़-संस्कृति' की जितनी आलोचना होती है, वह इसी तथ्य को रेखांकित करती है कि दण्ड-शक्ति का धारक **पहले आत्म-संयमी** हो, अन्यथा वह यमराज न बनकर **यातनाकर्ता** बन जाता है।

इस प्रकार यह श्लोक आज भी उतना ही सजीव है – यह **शासक, न्यायाधीश, पुलिस एवं प्रशासन – सभी को स्मरण** दिलाता है कि सच्चा न्याय उसी के वश में है, जो पहले अपने मन-मस्तिष्क पर विजयी है।

श्लोक ३७ – अतिकठोर/अतिकोमल-दण्ड-निषेध

मूल संस्कृत श्लोक

उद्वेजयति तीक्ष्णेन मृदुना परिभूयते ।

दण्डेन नृपतिस्तस्माद्युक्तदण्डः प्रशस्यते ॥३७॥

IAST (लिप्यंतरण)

udvejayati tīkṣṇena mṛdunā paribhūyate |

daṇḍena nṛpatis tasmād yuktadaṇḍaḥ praśasyate ||37||

शब्दार्थ (शब्द-कोश)

संस्कृत पद	**हिन्दी अर्थ**
उद्वेजयति	आतंकित / भयभीत / व्याकुल कर देता है
तीक्ष्णेन	अति-कठोर / निष्ठुर दण्ड के द्वारा
मृदुना	अति-कोमल / अत्यन्त मृदु / शिथिल दण्ड के द्वारा
परिभूयते	अपमानित / उपेक्षित / तिरस्कृत होता है
नृपतिः	राजा / शासक
तस्मात्	इसलिए / अतः
युक्तदण्डः	संतुलित / उचित / यथोचित दण्ड देने वाला
प्रशस्यते	प्रशंसनीय / सराहनीय कहा जाता है

भावार्थ (सारांश)

इस श्लोक में **कामन्दक** ने दण्ड-व्यवस्था के सबसे सूक्ष्म एवं महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त को स्पष्ट किया है –

- यदि राजा **अति-कठोर दण्ड** (तीक्ष्ण) देता है, तो वह प्रजा में **आतंक** एवं **असन्तोष** फैलाता है।
- यदि राजा **अति-कोमल / शिथिल दण्ड** (मृदु) देता है, तो वह प्रजा की दृष्टि में **उपेक्षित** एवं **अपमानित** होता है, जिससे अराजकता एवं अपराध बढ़ता है।

अतः दोनों चरम स्थितियाँ शासन के लिए हानिकारक हैं। **युक्त-दण्ड** (अपराध के अनुरूप संतुलित दण्ड) ही **प्रशंसनीय** है – जो न तो अत्याचारी हो, न ही लाचार।

मूल संदेश (शासन-सूत्र)

किसी भी शासन-व्यवस्था की **न्याय-प्रणाली** उसकी रीढ़ होती है। दण्ड का उद्देश्य **अपराध-निवारण** एवं **सामाजिक-व्यवस्था-संरक्षण** है, न कि प्रजा को आतंकित करना या अपराधियों को छूट देना। यह श्लोक **'मध्य-मार्गी दण्डनीति'** का प्रतिपादन करता है, जहाँ दण्ड की कठोरता अपराध की गम्भीरता, परिस्थितियों, एवं अपराधी की प्रकृति के अनुसार निर्धारित होनी चाहिए।

समसामयिक दृष्टिकोण (आधुनिक प्रासंगिकता)

आधुनिक विधि-शास्त्र में इस सिद्धान्त का प्रतिबिम्ब **समानुपातिक दण्ड-सिद्धान्त (Principle of Proportionate Sentencing)** के रूप में स्पष्ट दिखता है –

- **भारतीय न्याय-संहिता (BNS) एवं भारतीय दण्ड-विधान** – आज के दण्ड-विधान में सजा का निर्धारण करते समय न्यायाधीश अपराध की गम्भीरता, आशय एवं पूर्व-वृत्त (antecedents) देखते हैं। अत्यन्त कठोर सजा (जैसे – मृत्युदण्ड) को केवल 'अति-दुर्लभतम मामलों' (rarest of rare cases) में ही उचित ठहराया गया है, जबकि अत्यन्त हल्की सजा अपराध-पुनरावृत्ति को बढ़ावा देती है।

- **सुधारात्मक न्याय (Reformative / Restorative Justice)** – आधुनिक विचारधारा पूर्णतः दण्डात्मक (retributive) न होकर सुधारात्मक (reformative) पर भी बल देती है, किन्तु दोनों ही अतियों (अति-क्षमाशीलता या अति-कठोरता) से बचना चाहती है। यही 'युक्त-दण्ड' है।
- **संवैधानिक परीक्षण** – भारतीय संविधान का अनुच्छेद २१ (जीवन एवं व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का अधिकार) यह सुनिश्चित करता है कि दण्ड प्रक्रिया 'उचित' (just, fair and reasonable) हो, न कि मनमानी, अत्यधिक या शिथिल। उच्चतम न्यायालय ने अनेक निर्णयों में 'समानुपातिकता' को दण्ड-निर्धारण की कसौटी बनाया है।
- **दण्ड-विज्ञान (Penology) का आधार** – विश्वभर में दण्ड-विज्ञान का मूलमन्त्र है कि **दण्ड की निवारक शक्ति** (deterrence) तभी कार्य करती है, जब वह अपराध के अनुपात में हो। अति-कठोरता से जन-आक्रोश, और अति-शिथिलता से अराजकता उत्पन्न होती है – यह शाश्वत राजनीतिक एवं विधिक सत्य है।

इस प्रकार २,४०० वर्ष पूर्व लिखा यह श्लोक आज के **विधिक-लोकतान्त्रिक मूल्यों** एवं **मानवाधिकारों** के साथ पूर्णतया सामंजस्य रखता है, और न्यायपालिका को संतुलित दण्ड-प्रदान की सतत् प्रेरणा देता है।

श्लोक ३८ – अन्यायी-दण्ड : सज्जनों को भी क्षुब्ध करे

मूल संस्कृत श्लोक

त्रिवर्गं वर्धयत्याशु राज्ञो दण्डो यथाविधि ।

प्रणीतोऽथासमञ्जस्याद्वनस्थानपि कोपयेत् ॥३८॥

IAST (लिप्यंतरण)

trivargaṃ vardhayaty āśu rājño daṇḍo yathāvidhi |

praṇīto 'thāsamañjasyād vanasthān api kopayet ||38||

शब्दार्थ (शब्द-कोश)

संस्कृत पद	**हिन्दी अर्थ**
त्रिवर्गम्	त्रिवर्ग – अर्थात् धर्म, अर्थ और काम (त्रयी उपलब्धियाँ)
वर्धयति	बढ़ाता है / वृद्धि करता है
आशु	शीघ्र ही / तुरन्त
राज्ञः	राजा के
दण्डः	दण्ड-व्यवस्था / शासन-प्रणाली
यथाविधि	विधि-अनुसार / न्यायसम्मत / उचित रीति से
प्रणीतः	(जब) लागू / निर्धारित किया जाता है
अथ	परन्तु / यदि
असमञ्जस्यात्	असमानता / असंगति / अन्याय / विषमता के कारण

वनस्थान्	वनवासी संन्यासी / तपस्वी / सज्जन-विशेष (यहाँ अत्यन्त शान्त एवं धार्मिक व्यक्ति भी)
अपि	भी
कोपयेत्	क्रोधित / आक्रोशित कर देता है

भावार्थ (सारांश)

इस श्लोक में **कामन्दक** दण्ड-व्यवस्था के दो पक्षों को दिखाते हैं –

- **विधि-अनुसार (यथाविधि)** लागू किया गया दण्ड राजा के **धर्म, अर्थ और काम** – इन तीनों की शीघ्र वृद्धि करता है। अर्थात् न्यायोचित शासन से राजा की कीर्ति, आर्थिक समृद्धि और सांसारिक सुख-सुविधाएँ सभी बढ़ती हैं।
- परन्तु यदि यही दण्ड **असमानता / असंगति (असमञ्जस्य)** अर्थात् अन्याय, पक्षपात या अविवेकपूर्ण रूप से लागू किया जाय, तो वह **वनस्थ** (वन में रहने वाले तपस्वी एवं सज्जन) को भी **क्रोधित** कर सकता है।

इसका तात्पर्य यह है कि अन्यायी दण्ड केवल अपराधियों को ही नहीं, बल्कि सबसे शान्त, धार्मिक एवं सहनशील प्रजा को भी आक्रोशित कर विद्रोह की ओर धकेल सकता है।

मूल संदेश (शासन-सूत्र)

न्याय-व्यवस्था का **सर्वोच्च मापदण्ड निष्पक्षता और समानता** है। यदि दण्ड-व्यवस्था विधिक दृष्टि से सही भी हो, किन्तु उसका प्रयोग भेदभावपूर्ण, असंगत या स्वेच्छाचारी हो, तो वह शासन की **नैतिक साख** (moral legitimacy) को नष्ट कर देती है। जब अत्यन्त सज्जन एवं त्यागी व्यक्ति भी शासन से क्षुब्ध हो जाएँ, तो राजा का पतन निश्चित है। इसलिए दण्ड-प्रक्रिया में विधि की दृष्टि से समानता एवं पारदर्शिता अनिवार्य है।

समसामयिक दृष्टिकोण (आधुनिक प्रासंगिकता)

यह श्लोक समकालीन **न्याय-प्रणाली एवं सामाजिक-आन्दोलनों** का आधारभूत सत्य बताता है –

- **न्यायिक पक्षपात (Judicial Bias / Arbitrary Justice)** – जब किसी समाज में दण्ड का प्रयोग प्रभावशाली वर्गों के प्रति शिथिल और कमजोर वर्गों के प्रति कठोर दिखता है, तो वहाँ शान्तिप्रिय नागरिक भी आन्दोलनकारी बन जाते हैं। भारत में कई बार सामाजिक-राजनीतिक आन्दोलनों का मूल कारण 'असमान न्याय' की भावना ही रही है।
- **विधि-समक्ष समानता (Equality before Law)** – भारतीय संविधान का अनुच्छेद १४ सुनिश्चित करता है कि किसी को भी न्याय से वंचित न किया जाए और सभी को समान विधिक संरक्षण मिले। यही इस श्लोक का 'यथाविधि' का आधुनिक रूप है। इसका उल्लंघन (असमञ्जस्य) सर्वोच्च न्यायालय तक में टिप्पणी का विषय बनता है।
- **सामाजिक प्रतिरोध (Social Protests) एवं नागरिक अवज्ञा (Civil Disobedience)** – इतिहास में अनेकों बार देखा गया कि जब शासन-व्यवस्था पक्षपातपूर्ण लगती है, तब सामान्यतः शान्त नागरिक भी सड़कों पर उतर आते हैं। हाल के दशकों में (जैसे – CAA/NRC विरोध, किसान आन्दोलन, सामान्य विरोध-प्रदर्शन) – हालाँकि उनके कारण भिन्न थे, परन्तु मूलभूत आक्रोश का केन्द्र 'न्याय की उपलब्धता में असमानता' अवश्य होती है।
- **विधिक सुधारों की आवश्यकता** – यह श्लोक यह भी बताता है कि यदि राजा (आधुनिक संदर्भ में न्यायपालिका एवं कार्यपालिका) अपनी दण्ड-प्रक्रिया में विवेकपूर्ण संतुलन (यथाविधि) नहीं रखता, तो केवल अपराधी ही नहीं, अपितु समाज के स्तम्भ (सज्जन नागरिक) भी अविश्वासी हो जाते हैं, जो किसी भी सभ्यता के लिए घातक है।

इस प्रकार यह श्लोक हमें याद दिलाता है कि **न्याय को न केवल होना चाहिए, बल्कि दिखना भी चाहिए** (Justice must not only be done, but must also be seen to be done) – यह आधुनिक लोकतांत्रिक व्यवस्था का आधारस्तम्भ है।

श्लोक ३९ – अनुद्वेजन-दण्ड : समृद्धि का सूत्र

मूल संस्कृत श्लोक

लोकशास्त्रानुगो नेयो दण्डोऽनुद्वेजनः श्रिये ।

उद्वेजनादधर्मः स्यात्तस्माद्ध्वंसो महीपतेः ॥३९॥

IAST (लिप्यंतरण)

lokaśāstrānugo neyo daṇḍo 'nudvejanaḥ śriye /

udvejanād adharmaḥ syāt tasmāddhvaṃso mahīpateḥ //39//

शब्दार्थ (शब्द-कोश)

संस्कृत पद	**हिन्दी अर्थ**
लोकशास्त्रानुगः	लोक-व्यवहार एवं शास्त्र (धर्म-शास्त्र) के अनुकूल
नेयः	प्रयुक्त / नीत / लागू किया गया
दण्डः	दण्ड-व्यवस्था / शासन-विधि
अनुद्वेजनः	भय-रहित / आतंककारी न होने वाला
श्रिये	समृद्धि / ऐश्वर्य / कल्याण के लिए
उद्वेजनात्	आतंक / भय / अत्याचार उत्पन्न करने के कारण
अधर्मः	अधर्म / अन्याय / अनीति
स्यात्	होता है
तस्मात्	इसी से / इसलिए
ध्वंसः	सर्वनाश / पतन / विनाश
महीपतेः	राजा / शासक का

भावार्थ (सारांश)

कामन्दक इस श्लोक में दण्ड-व्यवस्था के **उच्चतम लक्ष्य** को परिभाषित करते हैं – राजा को दण्ड का प्रयोग इस प्रकार करना चाहिए कि वह **लोक-व्यवहार एवं शास्त्र दोनों के अनुकूल** हो तथा उससे प्रजा में **भय अथवा आतंक** उत्पन्न न हो। ऐसा अनुद्वेजनकारी (भय-मुक्त) दण्ड ही राज्य को **समृद्धि** (श्री) प्रदान करता है। इसके विपरीत, यदि दण्ड-व्यवस्था भय और आतंक (उद्वेजन) पर आधारित हो, तो वह **अधर्म** को जन्म देती है, और इस अधर्म से राजा का **सर्वनाश** अवश्यंभावी है।

मूल संदेश (शासन-सूत्र)

यह श्लोक राज्य-शक्ति के प्रयोग को **नैतिकता एवं सामाजिक-स्वीकार्यता** के साथ जोड़ता है। दण्ड का उद्देश्य जनता को कुचलना या आतंकित करना नहीं, बल्कि **व्यवस्था बनाए रखकर समृद्धि सुनिश्चित करना** है। एक बुद्धिमान शासक यह समझता है कि भय केवल बाहरी दमन करता है, जबकि विश्वास एवं न्यायपूर्ण अनुशासन स्थायी शान्ति एवं उत्पादन-क्षमता का आधार होता है। यदि शासन अत्याचारी बन जाए, तो वह अधर्म का पात्र बनता है, जो स्वतः ही राज्य के विनाश का कारण बनता है।

समसामयिक दृष्टिकोण (आधुनिक प्रासंगिकता)

आधुनिक विधि एवं प्रशासनिक अवधारणाएँ इस अनुद्वेजन-दण्ड के सिद्धान्त पर ही कार्य करती हैं –

- **सामुदायिक पुलिसिंग (Community Policing)** – आधुनिक पुलिस-व्यवस्था में 'सामुदायिक पुलिसिंग' इसी भावना पर आधारित है, जहाँ पुलिस और जनता के बीच भय नहीं, बल्कि विश्वास एवं सहयोग का सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। यह अपराध-निरोध को अधिक प्रभावी बनाता है।

- **सुधारात्मक एवं पुनर्वासात्मक न्याय (Reformative & Restorative Justice)** – आज विश्वभर में दण्ड-विज्ञान दण्डात्मकता (retribution) से हटकर सुधार (reformation) और पुनर्वास (rehabilitation) पर बल दे रहा है। इसका लक्ष्य अपराधी को समाज में पुनः स्थापित करना है, जो बिल्कुल 'अनुद्वेजन' (भय-मुक्त) दण्ड-प्रणाली का आधुनिक स्वरूप है।

- **नॉर्वे, स्वीडन जैसे देशों की दण्डनीति** – उत्तरी यूरोप के देशों (जैसे नॉर्वे) की जेल-व्यवस्था, जो मानवीय गरिमा, शिक्षा एवं कौशल-विकास पर केन्द्रित है, अत्यन्त निम्न पुनरावृत्ति-दर (recidivism) की सफलता देती है। यह प्रायोगिक रूप में सिद्ध करती है कि 'भय-मुक्त अनुशासन' ही दीर्घकालिक सामाजिक-समृद्धि और सुशासन का सबसे प्रभावी मार्ग है।

- **भारतीय न्याय-संहिता (BNS) में मानवीय दृष्टिकोण** – नवीन आपराधिक विधानों में भी किशोर न्याय, सजा-वैकल्पिक उपचारात्मक योजनाएँ (plea bargaining, probation) इसी सिद्धान्त को ध्यान में रखकर बनाई गई हैं, ताकि शासकीय दण्ड-शक्ति जनता के लिए आतंक का नहीं, बल्कि सुरक्षा-कवच का कार्य करे।

श्लोक ४० – मात्स्य-न्याय

मूल संस्कृत श्लोक

परस्परामिषतया जगतो भिन्नवर्त्मनः ।

दण्डाभावे परिध्वंसी मात्स्यो न्यायः प्रवर्तते ॥४०॥

IAST (लिप्यंतरण)

parasparāmiṣatayā jagato bhinnavartmanaḥ ।

daṇḍābhāve paridhvaṃsī mātsyo nyāyaḥ pravartate ॥40॥

शब्दार्थ (शब्द-कोश)

संस्कृत पद	हिन्दी अर्थ
परस्पर	परस्पर / आपस में

आमिषतया	एक-दूसरे को निगलने / भक्षण करने की प्रवृत्ति से
जगतः	जगत् / संसार / समाज का
भिन्नवर्त्मनः	भिन्न-भिन्न मार्गों / प्रकृतियों वाला
दण्डाभावे	दण्ड (शासन-व्यवस्था) के अभाव में
परिध्वंसी	विनाशकारी / सर्वनाशी
मात्स्यः	मत्स्य (मछली) सम्बन्धी
न्यायः	न्याय / स्थिति / व्यवस्था
प्रवर्तते	प्रवृत्त होती है / आरम्भ हो जाती है

भावार्थ (सारांश)

जब दण्ड (शासन-व्यवस्था, राजदण्ड) का अभाव हो जाता है, तो यह संसार, जिसके प्राणी स्वभावतः परस्पर-विरोधी मार्गों एवं प्रवृत्तियों वाले हैं, आपस में एक-दूसरे को निगलने लगता है। इस स्थिति में **मात्स्य-न्याय** अर्थात् **'बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है'** – यह विनाशकारी न्याय अपने आप प्रवर्तित हो जाता है। अर्थात् दण्ड-व्यवस्था के अभाव में समाज में अराजकता, शोषण एवं बल-प्रधानता का साम्राज्य स्थापित हो जाता है।

मूल संदेश (शासन-सूत्र)

'मात्स्य-न्याय' **कामन्दक** के अर्थशास्त्र का **सबसे सशक्त राजनीतिक-दार्शनिक सिद्धान्त** है। यह स्पष्ट करता है कि –

- मनुष्य स्वभावतः परस्पर-विरोधी हितों वाला है, इसलिए यदि कोई सर्वोच्च नियामक (राजा/राज्य/विधि) न हो तो **'जंगल-राज' (Law of Jungle)** का जन्म होता है।
- राज्य की उत्पत्ति का आधार ही **दण्ड** है, क्योंकि दण्ड ही उस शक्ति का नाम है, जो इन विरोधी हितों को नियन्त्रित कर सामाजिक सन्तुलन स्थापित करती है।
- 'मात्स्य-न्याय' से बचने का एकमात्र उपाय – **सशक्त, न्यायोचित एवं सक्रिय शासन-व्यवस्था** है।

समसामयिक दृष्टिकोण (आधुनिक प्रासंगिकता)

आज के वैश्विक एवं राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में 'मात्स्य-न्याय' का सिद्धान्त अत्यन्त प्रासंगिक है –

- **अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध (International Relations)** – अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर 'मात्स्य-न्याय' को 'राजनीतिक यथार्थवाद (Political Realism)' का प्रारम्भिक सूत्र माना जाता है। जब कोई सर्वोच्च वैश्विक शासन-निकाय (विश्व-सरकार) नहीं है, तो शक्तिशाली राष्ट्र (विशेषकर महाशक्तियाँ) अपने स्वार्थ के लिए दुर्बल राष्ट्रों पर प्रभुत्व स्थापित करने की कोशिश करते हैं। आज का 'बल-प्रधान अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति' (Power Politics) इसी 'मात्स्य-न्याय' का आधुनिक स्वरूप है।
- **अराजकता एवं गृह-युद्ध** – जिन देशों में शासन-व्यवस्था ढह जाती है, या जहाँ न्यायपालिका एवं पुलिस-प्रणाली कमजोर पड़ जाती है, वहाँ 'मात्स्य-न्याय' देखने को मिलता है – जहाँ बलवान गिरोह, अल्पसंख्यकों का शोषण करते हैं, और आम नागरिक असुरक्षित हो जाता है।

- **सामाजिक-आर्थिक असमानता** – पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में बिना नियामकीय संरक्षण (Regulatory Protection) के, बड़ी कम्पनियाँ छोटे उद्यमियों को बाजार से बाहर कर सकती हैं, जो 'मात्स्य-न्याय' का ही एक आर्थिक रूपान्तरण है।
- **संवैधानिक महत्त्व** – भारतीय संविधान ने भी 'विधि का शासन' (Rule of Law) को प्राथमिकता दी है, ताकि समाज में बल नहीं, विधि का बोलबाला रहे। यही कारण है कि किसी भी लोकतन्त्र के लिए **दण्ड-संहिता, पुलिस एवं न्यायपालिका** की मजबूती अनिवार्य है – क्योंकि उनके अभाव में ही 'बड़ी मछली छोटी को खाने' की स्थिति पैदा होती है।

इस प्रकार **कामन्दक** का यह श्लोक बताता है कि **सभ्यता और शासन-व्यवस्था का मूल आधार 'दण्ड'** है, और इसके अभाव में मानव-समाज पशु-समाज से भी बदतर हो जाता है।

श्लोक ४१ – दण्ड : पतन-गर्त से बचाने वाला

मूल संस्कृत श्लोक

जगदेतन्निराक्रन्दं कामलोभादिभिर्बलात् ।

निमज्ज्यमानं निरये राज्ञा दण्डेन धार्यते ॥४१॥

IAST (लिप्यंतरण)

jagad etan nirākrandaṃ kāmalobhādibhir balāt ।

nimajjyamānaṃ niraye rājñā daṇḍena dhāryate ॥41॥

शब्दार्थ (शब्द-कोश)

संस्कृत पद	**हिन्दी अर्थ**
एतत्	यह (समस्त संसार/समाज)
जगत्	जगत् / संसार / सामाजिक-व्यवस्था
निराक्रन्दम्	आर्तनाद-रहित / असहाय / सहारा न मिलने पर विलाप करने वाला
कामलोभादिभिः	काम (इच्छा/वासना), लोभ (लालच), क्रोध, मोह, मद, मत्सर आदि षड्विकारों से
बलात्	बलपूर्वक / जोर-जबरदस्ती से
निमज्ज्यमानम्	डूबते हुए / नीचे गिरते हुए
निरये	नरक / पतन-गर्त / अधोगति / विनाशकारी स्थिति
राज्ञा	राजा / शासक / राज्य-शक्ति के द्वारा
दण्डेन	दण्ड-शक्ति / कानून / न्याय-व्यवस्था के द्वारा
धार्यते	धारण / उद्धार / रक्षा की जाती है

भावार्थ (सारांश)

यह समाज अपनी बुरी वृत्तियों (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर) के कारण बलपूर्वक **पतन-गर्त (निरय)** में डूब रहा है और उसकी पुकार भी नहीं सुनी जा रही (असहाय अवस्था)। इसी समाज को **राजा अपने दण्ड-शक्ति (कानून एवं न्याय-व्यवस्था) के द्वारा उस विनाश-गर्त से उबारता / धारण करता है।** अर्थात् दण्ड केवल दमन का साधन नहीं, वरन् **समाज-रक्षा का प्रधान अस्त्र** है, जो अनियंत्रित मानव-विकारों को नियन्त्रित करके सभ्यता को सुरक्षित रखता है।

मूल संदेश (शासन-सूत्र)

यह श्लोक दण्ड-व्यवस्था के **उद्धारक (साल्वेशन)** एवं **संरक्षणात्मक (प्रोटेक्टिव)** पक्ष को रेखांकित करता है –

1. **दण्ड एक नैसर्गिक औषधि है** – जिस प्रकार बीमारी रोगी को नष्ट कर देती है, किन्तु औषधि उसे बचाती है, उसी प्रकार काम-लोभ-क्रोध की 'सामाजिक बीमारी' समाज को नष्ट करती है, और दण्ड-शक्ति उसे इस विनाश से बचाती है।

2. **दण्ड का आधार 'करुणा' है** – इस श्लोक में 'निराक्रन्दम्' (विलाप करने वाला / असहाय) शब्द बताता है कि समाज स्वयं अपने विकारों के कारण असहाय है। राज्य का कानून उस असहाय समाज का 'संरक्षक' है, न कि केवल 'दमनकर्ता'।

3. **'मत्स्य-न्याय' का निवारण** – बिना दण्ड के बलवान मछली द्वारा दुर्बल मछली को निगल लेने की स्थिति (मत्स्य-न्याय) उत्पन्न होती है। दण्ड इस अराजकता को रोकता है और दुर्बल-सबल में सन्तुलन स्थापित करता है।

समसामयिक दृष्टिकोण (आधुनिक प्रासंगिकता)

आज के डिजिटल एवं वैश्वीकृत युग में 'काम-लोभ-क्रोध' ने नए आयाम ले लिए हैं – साइबर-अपराध, डेटा-चोरी, धोखाधड़ी, अफवाहें, साम्प्रदायिक दंगे, वित्तीय घोटाले आदि। इन सबसे समाज (जगत्) लगातार पतन-गर्त (निरय) की ओर अग्रसर हो रहा है।

आधुनिक राज्य इनसे निपटने के लिए निम्न साधनों को 'दण्ड' (कानूनी-शक्ति) के रूप में प्रयुक्त करता है –

- **सूचना-प्रौद्योगिकी अधिनियम (IT Act) एवं डिजिटल व्यक्तिगत-डेटा संरक्षण अधिनियम (DPDP Act 2023)** – ये कानून डिजिटल जगत में लोगों के व्यक्तिगत डेटा को लोभ-वश चोरी करने वाली कॉर्पोरेट एवं साइबर-अपराधी शक्तियों से आम नागरिक (निराक्रन्द / असहाय व्यक्ति) की रक्षा करते हैं। वे उसे 'डिजिटल निरय' (डेटा-उल्लंघन, पहचान-चोरी, साइबर-धोखाधड़ी) से बचाते हैं।

- **मीडिया-नियमन एवं सोशल-मीडिया-संहिता** – फर्जी खबरें (फेक न्यूज़), भ्रामक विज्ञापन एवं घृणास्पद भाषण (हैट-स्पीच) समाज में विभाजन एवं अराजकता फैलाते हैं। प्रेस-काउंसिल, ब्रॉडकास्टिंग-नियामक (जैसे – TRAI, MIB) एवं सोशल-मीडिया प्लेटफार्मों की नीतियाँ, इन 'बलात्' प्रवृत्तियों को नियंत्रित करके सामाजिक-सौहार्द (सभ्यता) को धारण करती हैं।

- **वित्तीय-नियामक (RBI, SEBI, IRDAI)** – बाजार में लोभ एवं धोखाधड़ी (जैसे – शेयर-बाजार-हेराफेरी, चिट-फण्ड, बैंक-धोखाधड़ी) से निवेशकों एवं आम जनता को बचाने के लिए ये नियामक कठोर दण्डात्मक कार्रवाई करते हैं। यही आधुनिक 'दण्ड' है, जो अर्थ-व्यवस्था को पतन-गर्त से उबारता है।

- **सुप्रीम कोर्ट एवं उच्च न्यायालयों की न्यायिक-सक्रियता** – जहाँ कानून मौन हो या राज्य लाचार हो, वहाँ न्यायपालिका 'संविधान-दण्ड' (Contempt, Quo Warranto, Habeas Corpus) के माध्यम से नागरिकों के मौलिक-अधिकारों की रक्षा करती है, जो पूर्णतः 'निराक्रन्द' (असहाय-व्यक्ति) के उद्धार का आधुनिक रूप है।

इस प्रकार, **कामन्दक** का यह श्लोक आज के **'न्यायिक-मानवतावाद' (Judicial Humanism)** एवं **'नियामक-राज्य' (Regulatory State)** की अवधारणा का आधार-स्तम्भ है – यह सिद्ध करता है कि कानून का वास्तविक स्वरूप **दमन नहीं, बल्कि उद्धार** है।

श्लोक ४२ – दण्ड-भय : सज्जन-आचरण की नींव

मूल संस्कृत श्लोक

इदं प्रकृत्या विषयैर्वशीकृतं परस्परस्त्रीधनलोलुपं जगत् ।

सनातने वर्त्मनि साधुसेविते प्रतिष्ठते दण्डभयोपपीडितम् ॥४२॥

IAST (लिप्यंतरण)

idaṃ prakṛtyā viṣayair vaśīkṛtaṃ paraspara strīdhana lolupaṃ jagat ।

sanātane vartmani sādhusevite pratiṣṭhate daṇḍabhayopapīḍitam ॥42॥

शब्दार्थ (शब्द-कोश)

संस्कृत पद	**हिन्दी अर्थ**
इदम्	यह (संसार / जगत्)
प्रकृत्या	स्वभाव से / जन्मजात प्रवृत्ति से
विषयैः	विषय-वासनाओं / इन्द्रिय-सुखों द्वारा
वशीकृतम्	वशीभूत / पराजित / नियन्त्रित
परस्पर	एक-दूसरे के प्रति
स्त्रीधनलोलुपम्	स्त्री (पर-स्त्री) एवं धन (पर-धन) में लोलुप / लालची
जगत्	जगत् / समाज / मानव-समूह
सनातने	सनातन / शाश्वत / प्राचीनतम
वर्त्मनि	मार्ग / पथ / आचार-संहिता पर
साधुसेविते	सज्जनों / विद्वानों / सदाचारियों द्वारा सेवित / आचरित
प्रतिष्ठते	स्थिर / अवस्थित / टिका रहता है
दण्डभयोपपीडितम्	दण्ड के भय से पीड़ित / दबा हुआ / नियंत्रित

भावार्थ (सारांश)

कामन्दक इस श्लोक में मानव-स्वभाव का अत्यन्त **यथार्थवादी (realistic)** चित्रण करते हैं –

मनुष्य स्वभाव से ही इन्द्रिय-सुखों (विषयों) से वशीभूत है। वह स्वाभाविक रूप से दूसरों की स्त्री और दूसरों के धन के प्रति लोलुप रहता है। यदि इस लोलुप स्वभाव पर कोई अंकुश न लगाया जाए, तो समाज अराजक एवं नीति-शून्य हो जाता है।

किन्तु जब यही स्वार्थी एवं लोलुप जगत् **दण्ड-भय** से दबकर / नियंत्रित होकर (अपराध-दण्ड के भय से प्रेरित होकर) सनातन (शाश्वत) मार्ग पर चलता है, जिसे सज्जन-पुरुष सदैव अपनाते आए हैं, तभी वह स्थिर एवं व्यवस्थित रहता है।

अतः **दण्ड का भय** ही सज्जन-आचरण एवं सामाजिक-व्यवस्था की मूल नींव है – यह इस श्लोक का मर्म है।

मूल संदेश (शासन-सूत्र)

यह श्लोक **कामन्दक** की **'अर्थशास्त्रीय दृष्टि'** का प्रतीक है –

1. मानव-स्वभाव आदर्शवादी (कल्पित-पुरुष) नहीं, बल्कि स्वार्थी एवं विषय-लोलुप है। अतः शासन को यथार्थवादी धारणाओं पर खड़ा होना चाहिए।

2. नीति-नियमों का पालन केवल विवेक (ज्ञान) या नैतिक-शिक्षा से नहीं, वरन् **दण्ड-भय** से भी होता है। दण्ड-भय ही उस 'रक्षा-कवच' का कार्य करता है, जो सामाजिक-पशुता को रोकता है।

3. 'सनातन-मार्ग' (धर्म, कर्तव्य, एवं सदाचार) सज्जनों द्वारा सेवित अवश्य है, किन्तु सामान्य मनुष्य के लिए उस मार्ग पर बने रहने का सशक्त साधन **'दण्ड-शक्ति'** ही है।

समसामयिक दृष्टिकोण (आधुनिक प्रासंगिकता)

आधुनिक समाज के प्रत्येक क्षेत्र में दण्ड-भय ही अनुपालन (compliance) का सबसे प्रभावी साधन है –

- **यातायात-नियम (Traffic Rules)** – तीव्र गति, रेड-लाइट पार करना, या नशे में गाड़ी चलाने पर चालान एवं जुर्माना का भय ही लोगों को नियमों का पालन करने के लिए बाध्य करता है। नैतिक-शिक्षा से कम, दण्ड-भय अधिक कारगर सिद्ध होता है।

- **कर-कानून (Tax Laws & GST Compliance)** – आयकर एवं जीएसटी का अनुपालन मुख्यतः सर्वेक्षण, ब्याज, जुर्माना एवं दण्डात्मक प्रावधानों (penal provisions) के भय पर टिका है। बिना दण्ड-भय के ईमानदारी से कर-भुगतान की कल्पना अवास्तविक है।

- **पर्यावरण-नियम (Environmental Regulations)** – प्रदूषण नियन्त्रण, ई-कचरा प्रबन्धन, और वन-संरक्षण जैसे क्षेत्रों में कम्पनियाँ भारी अर्थ-दण्ड (penalties) एवं संस्थागत कार्यवाही के भय से ही नियमों का पालन करती हैं।

- **कॉरपोरेट-शासन (Corporate Governance)** – सेबी (SEBI) एवं कम्पनी-अधिनियम के अन्तर्गत अंकेक्षण (audit), वित्तीय-रिपोर्टिंग एवं बाजार-आचरण भी दण्डात्मक प्रावधानों के भय से ही अनुशासित रहते हैं।

- **अन्तर्राष्ट्रीय-व्यवस्था** – संयुक्त राष्ट्र प्रतिबन्ध, अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय, एवं व्यापार-विवाद-निवारण तन्त्र (WTO) भी दण्ड-भय अथवा व्यावसायिक-प्रतिबन्ध की सामूहिक शक्ति पर ही आधारित हैं।

इस प्रकार आधुनिक **विधि-शासन (Rule of Law)** का यह मूलभूत सत्य है कि नीतियों, अधिनियमों एवं विनियमों की सार्थकता के लिए **'प्रभावी दण्ड-व्यवस्था'** की नितान्त आवश्यकता है। यही इस श्लोक का सार्वकालिक यथार्थवादी सन्देश है।

श्लोक ४३ – सामाजिक-मनोविज्ञान

ऐतिहासिक-संदर्भ एवं अस्वीकरण

प्राचीन ग्रन्थों में वर्णित कुछ दृष्टान्त उस काल की सामाजिक-धार्मिक मान्यताओं एवं वैधानिक-संरचना के प्रतिबिम्ब होते हैं। प्रस्तुत श्लोक में स्त्री-पुरुष-सम्बन्धों का जो विवरण है, वह उस युग (प्राचीन भारत) की विशिष्ट सामाजिक व्यवस्था एवं कानूनी-अनुशासन की व्याख्या करता है। **इसे वर्तमान संवैधानिक मूल्यों, समानता, स्वतन्त्रता एवं मानवाधिकारों की कसौटी पर परखने के साथ-साथ 'दण्ड-भय' के मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक-नियन्त्रण-पहलू पर केन्द्रित करके पढ़ा जाना चाहिए; इसे आज के सामाजिक आदर्श के रूप में स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए।**

मूल संस्कृत श्लोक

नियतविषयवर्ती प्रायशो दण्डयोगाज् जगति परवशेऽस्मिन् दुर्लभः साधुवृत्तः ।

कृशम् अथ विकलं वा व्याधितं वाधनं वा पतिम् अपि कुलनारी दण्डभीत्याभ्युपैति ॥४३॥

IAST (लिप्यंतरण)

niyataviṣayavartī prāyaśo daṇḍayogāj jagati paravaśe 'smin durlabhaḥ sādhuvṛttaḥ ।

kṛśam atha vikalaṃ vā vyādhitaṃ vādhanaṃ vā patim api kulanārī daṇḍabhītyābhyupaiti ॥43॥

शब्दार्थ (शब्द-कोश)

संस्कृत पद	**हिन्दी अर्थ**
नियतविषयवर्ती	नियत/निश्चित विषय-सुखों में आसक्त / अपनी इन्द्रिय-तृष्णा में मग्न
प्रायशः	अधिकतर / प्रायः
दण्डयोगात्	दण्ड (कानूनी-सजा) के प्रयोग / उपस्थिति से
परवशे	परवश / दूसरों के नियन्त्रण में / कानून-तन्त्र के वश में
अस्मिन्	इस (जगत्) में
दुर्लभः	दुर्लभ / कठिनता से प्राप्त होने वाला
साधुवृत्तः	सज्जन-स्वभाव / स्वाभाविक-सदाचार / बिना दबाव के नैतिक व्यक्ति
कृशम्	कृश / दुर्बल / क्षीणकाय
विकलम्	विकलांग / अंगहीन
व्याधितम्	रोगी / बीमार
अधनम्	निर्धन / बिना धन-सम्पत्ति वाला
पतिम्	पति / स्वामी को
अपि	भी

कुलनारी	कुल-स्त्री / सुशिक्षित सती स्त्री
दण्डभीत्या	दण्ड के भय से (कानूनी दण्ड अथवा सामाजिक-तिरस्कार के भय से)
अभ्युपैति	स्वीकार करती है / आश्रय देती है / अपनाती है (वैवाहिक सम्बन्ध में बने रहना)

भावार्थ (सारांश)

इस श्लोक का प्रथम भाग पिछले श्लोक (४२) के विचार को पुनः प्रतिष्ठित करता है – **मानव-स्वभाव** स्वाभाविक रूप से विषय-वासनाओं में आसक्त है, और इस संसार में अधिकांशतः स्वेच्छा से सदाचारी (साधुवृत्त) मनुष्य **अत्यन्त दुर्लभ** है। मानव को नैतिक-मार्ग पर रखने का मुख्य माध्यम '**दण्ड-प्रयोग**' (कानूनी व सामाजिक-दमन) ही है।

द्वितीय भाग इसी बात को स्त्री-पुरुष-सम्बन्धों के माध्यम से स्पष्ट करता है – यहाँ तक कि **कुल-स्त्री** (सुशील एवं कुलीन स्त्री) भी, यदि उसका पति **कृश (दुर्बल), विकलांग, रोगी अथवा निर्धन** हो जाए, तो भी उसे **स्वेच्छा से** नहीं, वरन् **दण्ड-भय** (उस समय की विधि-व्यवस्था या सामाजिक-बहिष्कार के भय) के कारण ही वैवाहिक-सम्बन्ध में बने रहने के लिए बाध्य होना पड़ता है।

(नोट: आधुनिक दृष्टि में यह उदाहरण अत्यन्त पुरातन एवं पितृसत्तात्मक है, किन्तु इसका मूल-स्वर 'मानवीय-नैसर्गिक-व्यवहार' पर कानूनी-सजा की सर्वोच्चता दर्शाना है।)

मूल संदेश (शासन-सूत्र)

कामन्दक (एवं कौटिल्यीय परम्परा) इस श्लोक द्वारा **नियम-निरपेक्ष-प्राकृतिक-मानवीय-व्यवहार** की अवधारणा को नकारते हैं। उनके अनुसार –

1. **मानव-प्रकृति** अनुशासन-हीन होने पर सहज ही नीति-मार्ग से भ्रष्ट हो जाती है।
2. **सदाचार (धर्म)** बिना किसी बाह्य-बल (दण्ड-व्यवस्था) के केवल विरल व्यक्तियों में ही पाया जाता है; अतः समाज के सामान्य-जन के लिए दण्ड-शक्ति ही आधार है।
3. समाज की सबसे सूक्ष्म इकाई (परिवार) में भी यदि दण्ड-भय न रहे, तो प्राकृतिक-स्वार्थ (जैसे – सम्पन्न/स्वस्थ पति की इच्छा) सामाजिक-कर्तव्यों को नष्ट कर सकता है। अतः **विधि-व्यवस्था एवं सामाजिक-मानदण्डों का बाह्य-बल** ही सामाजिक-बन्धनों को सुरक्षित रखता है।

समसामयिक दृष्टिकोण (आधुनिक प्रासंगिकता)

आधुनिक-युग में भी दण्ड-भय सामाजिक-सम्बन्धों एवं संस्थागत-अनुपालन का एक प्रमुख स्तम्भ है, किन्तु अब यह **मानवीय-गरिमा एवं समानता** से ओत-प्रोत है –

- **हिन्दू विवाह अधिनियम, १९५५ एवं विशेष विवाह अधिनियम** – पति-पत्नी के आपसी अधिकारों एवं कर्तव्यों का निर्धारण करने वाले ये अधिनियम एवं 'पति-पत्नी एवं बालक-भरण-पोषण अधिनियम' (Maintenance Acts) पति-पत्नी को परित्याग करने पर वैधानिक-सजा एवं आर्थिक-दायित्वों के भय से बाँधे रखते हैं। न्यायालय द्वारा भरण-पोषण या सम्पत्ति-अधिकारों पर दण्डात्मक-प्रावधान ही विवाह-संस्था को कानूनी-अनुशासन प्रदान करते हैं।
- **विकलांग-व्यक्ति-अधिकार-अधिनियम (RPWD Act, 2016) एवं UNCRPD** – ये अन्तर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय-कानून यह सुनिश्चित करते हैं कि कोई भी व्यक्ति अपने जीवन-साथी (पति या पत्नी) को केवल विकलांगता, बीमारी

या आर्थिक-स्थिति के आधार पर त्याग न दे सके। भेदभाव पर कानूनी-दण्ड एवं जुर्माने का प्रावधान ही इसे सामाजिक-रूप से लागू करता है, जो 'दण्ड-भय' का आधुनिक एवं मानवाधिकार-सम्मत स्वरूप है।

- **आपराधिक-प्रक्रिया-संहिता (BNSS) एवं पारिवारिक-न्यायालय** – वैवाहिक-विवादों, तलाक, या परित्याग के मामलों में न्यायालय की कार्यवाही एवं दण्डात्मक-आदेश (जैसे – अन्तरिम-भरण-पोषण, परित्याग-मामले में कारावास) परिवार-संस्था को टूटने से बचाने में सहायक होते हैं।

इस प्रकार यह श्लोक, अपने कठोर ऐतिहासिक-उदाहरण के बावजूद, **'कानूनी-बल (Coercive Power of Law)'** के सामाजिक-मनोविज्ञान को स्पष्ट करता है – जो आज भी विधि-शासन, सामाजिक-न्याय एवं मानवाधिकार-संरक्षण के क्षेत्रों में प्रासंगिक है।

श्लोक ४४ – नदी-समुद्र-रूपक : स्थायी-समृद्धि

मूल संस्कृत श्लोक

इति परिगणितार्थः शास्त्रमार्गानुसारी नियमयति यतात्मा यः प्रजा दण्डनीत्या ।

अपुनरपगमाय प्राप्तमार्गप्रचाराः सरित इव समुद्रं सम्पदस्तं विशन्ति ॥४४॥

IAST (लिप्यंतरण)

iti parigaṇitārthaḥ śāstramārgānusārī niyamayati yatātmā yaḥ prajā daṇḍanītyā ।

apunarapagamāya prāptamārgapracārāḥ sarita iva samudraṃ sampadas taṃ viśanti ॥44॥

शब्दार्थ (शब्द-कोश)

संस्कृत पद	**हिन्दी अर्थ**
इति	इस प्रकार / यों
परिगणितार्थः	समस्त अर्थ-शास्त्रों (नीतियों) का सम्यक् ज्ञाता
शास्त्रमार्गानुसारी	शास्त्र-विहित मार्ग का अनुसरण करने वाला
यतात्मा	जीत-इन्द्रिय / आत्म-संयमी
यः	जो (राजा)
प्रजा	प्रजा को
दण्डनीत्या	दण्डनीति (शासन-विज्ञान) के द्वारा
नियमयति	नियमित / अनुशासित / संयमित करता है
अपुनरपगमाय	बिना लौटे / स्थायी रूप से / जिसका पुनः ह्रास न हो
प्राप्तमार्गप्रचाराः	सुस्थापित मार्ग पर प्रवाहित होने वाली
सरितः	नदियाँ

इव	के समान / ज्यों
समुद्रम्	समुद्र को
सम्पदः	समृद्धियाँ / धन-सम्पत्ति / वैभव
तम्	उस (राजा) को
विशन्ति	प्रवेश करती हैं / प्राप्त होती हैं

भावार्थ (सारांश)

जो राजा समस्त अर्थ-नीतियों का पूर्ण ज्ञाता है, शास्त्र-निर्देशित मार्ग पर चलता है, आत्म-संयमी है, तथा अपनी प्रजा को दण्डनीति द्वारा सम्यक् रूप से अनुशासित करता है – उसके राज्य में **समृद्धियाँ कभी वापस नहीं लौटतीं**। वे स्थायी एवं संचयी रूप से उसी प्रकार उस राजा के पास आती रहती हैं, जिस प्रकार **नदियाँ** बिना किसी रुकावट एवं बिना वापस लौटे, अपने निश्चित मार्ग पर बहती हुई **समुद्र** में जाकर मिलती हैं। यह सम्पदा-प्रवाह कभी थमता नहीं, क्योंकि राजा का शासन-तन्त्र ही उसका अनवरत स्रोत बन जाता है।

मूल संदेश (शासन-सूत्र)

सुदण्ड-शासन ही वह चुम्बकीय शक्ति है जो **धन, वैभव एवं समृद्धि** को स्थायी रूप से आकर्षित करती है और उसे बनाए रखती है। शास्त्र-ज्ञान, आत्म-संयम और दण्डनीति का समन्वय ही **सुशासन (Good Governance)** है। जहाँ नियम स्पष्ट हों, शासक आत्म-अनुशासित हो, तथा दण्ड-व्यवस्था न्यायोचित हो – वहाँ न तो भ्रष्टाचार पनपता है, न ही पूँजी पलायन (Capital Flight) होता है; अपितु सम्पदा का स्थायी प्रवाह अपने आप स्थापित हो जाता है।

समसामयिक दृष्टिकोण (आधुनिक प्रासंगिकता)

इस श्लोक का यथार्थ आधुनिक **विधि-शासन (Rule of Law)** एवं **आर्थिक-स्थिरता** के सिद्धान्त में स्पष्ट दिखता है –

- **सिंगापुर एवं स्विट्ज़रलैंड** – ये दोनों ही देश पारदर्शी प्रशासन, न्यायोचित दण्ड-व्यवस्था, एवं नियमों की सख्ती (zero-tolerance to corruption) के कारण विश्व के सर्वाधिक **प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (FDI)** एवं **स्थायी कर-राजस्व** वाले देशों में गिने जाते हैं। निवेशक जहाँ सुशासन देखते हैं, वहाँ वे दीर्घकालिक निवेश करते हैं – यही 'नदी-समुद्र' का आधुनिक प्रमाण है।

- **भारत में जीएसटी संग्रह एवं FDI प्रवाह** – पिछले एक दशक में भारत में वस्तु एवं सेवा कर (GST) संग्रह में लगातार वृद्धि हुई है; वैश्विक मन्दी के बावजूद FDI रिकॉर्ड स्तर पर पहुँचा है। इसका कारण डिजिटल पारदर्शिता, नियमों का सरलीकरण, और दण्डात्मक प्रावधानों का भय है, जो कर-चोरी एवं अवैध लेन-देन को रोकते हैं। जैसे नदियाँ समुद्र में मिलती हैं, वैसे ही कर-राजस्व एवं निवेश सुशासित राज्य में निरन्तर संचित होते हैं।

- **बेहतर कारोबारी माहौल (Ease of Doing Business)** – विश्व बैंक की 'ईज ऑफ डूइंग बिजनेस' रैंकिंग यह सिद्ध करती है कि जहाँ प्रशासनिक प्रक्रियाएँ पारदर्शी हों, अनुबन्धों का पालन (contract enforcement) सुनिश्चित हो, तथा भ्रष्टाचार पर दण्ड-व्यवस्था सख्त हो, वहाँ व्यवसाय पनपते हैं और आर्थिक-समृद्धि स्थायी रूप से स्थापित हो जाती है।

इस प्रकार **कामन्दक** का यह नदी-समुद्र-रूपक **आधुनिक अर्थशास्त्र एवं लोक-प्रशासन** का शाश्वत सत्य है – **'अनुशासित व्यवस्था ही स्थायी वैभव की जननी है।'**

दण्डमाहात्म्य – प्रकरण-सारांश

(श्लोक ३७ से ४४ तक के दण्ड-विषयक विवेचन का निष्कर्ष)

1. **दण्ड (शासन-शक्ति) सभ्यता का अस्तित्व-आधार है** – बिना दण्ड-व्यवस्था के समाज अराजक एवं जंगली हो जाता है।
2. **मात्स्य-न्याय** – दण्ड-अभाव में बड़ी मछली छोटी को निगल जाती है; अर्थात् अराजकता एवं शोषण का राज्य स्थापित होता है।
3. **युक्त-दण्ड (संतुलित)** ही सच्चा न्याय है – न अति-कठोर, न अति-कोमल; अपराध-अनुपाती दण्ड ही शासन की कसौटी है।
4. **अनुद्वेजन-दण्ड (भय-रहित अनुशासन)** – दण्ड इतना संतुलित हो कि वह आतंकित न करे, किन्तु उतना प्रभावी हो कि वह नियमों के प्रति सम्मान उत्पन्न कर सके; यही सच्ची समृद्धि का मार्ग है।
5. **सुदण्ड-शासन → स्थायी-समृद्धि (नदी-समुद्र-रूपक)** – जिस राज्य की दण्ड-व्यवस्था न्यायोचित, सुसंगत एवं पारदर्शी हो, वहाँ सम्पदा (धन, निवेश, कर-राजस्व) बिना रुके एवं बिना ह्रास के निरन्तर प्रवाहित होती रहती है।

तुलनात्मक अध्ययन – कामन्दक बनाम अन्य विचारक

प्रस्तुत है कामन्दक (नीतिसार) की तुलना कौटिल्य (अर्थशास्त्र), मनु (मनुस्मृति), प्लेटो (रिपब्लिक), अरस्तू (पॉलिटिक्स) एवं हॉब्स (लेवियाथन) से – जो प्राच्य एवं पाश्चात्य दोनों ही परम्पराओं के प्रमुख राजनीतिक-दार्शनिक हैं।

१. मूलभूत तुलनात्मक सारणी

मापदण्ड	**कामन्दक**	**कौटिल्य**	**मनु**	**प्लेटो**	**अरस्तू**	**हॉब्स**
मूल ग्रंथ	नीतिसार	अर्थशास्त्र	मनुस्मृति	रिपब्लिक	पॉलिटिक्स	लेवियाथन
शासन-आधार	चार विद्याएँ + दण्ड	सप्तांग + दण्ड	वर्णाश्रम + धर्म	दार्शनिक-राजा	संविधान + मध्यम-वर्ग	सामाजिक-संविदा
दण्ड-दृष्टि	संतुलित (युक्त-दण्ड)	कठोर	धर्म-आधारित	न्याय-आधारित	न्याय-आधारित	निरंकुश
नैतिकता	धर्म-आधारित	राज्य-हित प्रधान	धर्म-प्रधान	सत्य-न्याय-प्रधान	सद्गुण-प्रधान	स्वार्थ-प्रधान
लक्ष्य	चतुर्वर्ग (धर्म+अर्थ+काम+मोक्ष)	अर्थ (समृद्धि)	धर्म	न्याय	कल्याण	शांति-सुरक्षा
आधुनिक समानता	Rule of Law, SDGs	Realpolitik	Theocratic Law	Philosopher King	Constitutionalism	Social Contract

२. कल्याणकारी राज्य (Welfare State) – तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य

विचारक	राज्य-लक्ष्य	आधुनिक-प्रतिबिम्ब
कामन्दक	योगक्षेम (समृद्धि + सुरक्षा)	SDGs, कल्याणकारी-राज्य
कौटिल्य	अर्थ-वृद्धि (सम्पत्ति-अर्जन)	आर्थिक-राष्ट्रवाद

प्लेटो	न्यायपूर्ण-समाज	मानवाधिकार-आधारित
अरस्तू	सद्गुणी-नागरिक	नैतिक-शिक्षा
हॉब्स	अराजकता-निवारण	सुरक्षा-राज्य

३. तुलनात्मक विश्लेषण – सारांश

कामन्दक की विशिष्टता – कामन्दक अन्य विचारकों से इस मायने में भिन्न हैं कि वे चार विद्याओं (आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता, दण्डनीति) के समन्वय पर बल देते हैं, जो केवल कौटिल्य के अर्थ-केन्द्रित दृष्टिकोण से व्यापक है। जहाँ कौटिल्य राज्य-हित को सर्वोपरि मानते हैं, वहीं कामन्दक धर्म को नैतिक-आधार बनाकर दण्ड-व्यवस्था को संतुलित (युक्त-दण्ड) रखते हैं।

पाश्चात्य दृष्टि से तुलना – प्लेटो का 'दार्शनिक-राजा' और अरस्तू का 'संविधान-प्रेमी मध्यम-वर्ग' कामन्दक के 'विनयान्वित राजा' से मेल खाता है, किन्तु कामन्दक अधिक व्यावहारिक हैं क्योंकि वे विशेषज्ञों एवं अनुभवियों की मण्डली (तद्विद्यैस्तत्क्रियोपेतैः) को निर्णय-प्रक्रिया में अनिवार्य मानते हैं। हॉब्स की 'सामाजिक-संविदा' एवं 'निरंकुश-शक्ति' के विपरीत कामन्दक का दण्ड-भय यद्यपि शासन-आधार है, फिर भी वह धर्म एवं विद्वत्-मण्डली से नियंत्रित है, जो हॉब्सीय निरंकुशतावाद से कहीं अधिक संतुलित है।

कल्याणकारी राज्य के संदर्भ में – कामन्दक का 'योगक्षेम' (समृद्धि और सुरक्षा का समुचित मेल) आधुनिक सतत् विकास लक्ष्यों (SDGs) एवं समग्र कल्याणकारी राज्य के सर्वाधिक निकट है, जबकि कौटिल्य आर्थिक-राष्ट्रवाद, प्लेटो मानवाधिकार-आधारित न्याय, अरस्तू नैतिक-शिक्षा, और हॉब्स मात्र सुरक्षा-राज्य पर केन्द्रित हैं। अतः कामन्दक का दर्शन आधुनिक संवैधानिक-लोकतान्त्रिक एवं कल्याणकारी मूल्यों के साथ सर्वाधिक सामंजस्य रखता है।

निष्कर्ष एवं आधुनिक प्रासंगिकता

कामन्दकीय नीतिसार का द्वितीय सर्ग स्पष्ट करता है कि किसी भी राज्य की स्थिरता एवं समृद्धि केवल बल-प्रदर्शन या वाक्पटुता से नहीं, वरन् **चार विद्याओं (आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता, दण्डनीति)** , **कर्तव्यपरायण समाज-व्यवस्था (वर्णाश्रम-धर्म)** , एवं **न्यायपूर्ण एवं संतुलित दण्ड-व्यवस्था** के समन्वय से ही संभव है। आचार्य कामन्दक का यह समग्र दृष्टिकोण आज के लोकतान्त्रिक, बहुलवादी एवं संवैधानिक शासन-तन्त्र के लिए उतना ही प्रासंगिक है, जितना प्राचीन काल में राज-प्रशासन के लिए था।

आधुनिक भारत के लिए पाँच प्रमुख सीख

१. संविधान की सर्वोच्चता (Constitutional Supremacy)जिस प्रकार दण्डनीति राजा (शासक) को उसकी मनमानी से रोकती थी और उसे शास्त्र-विधि के अधीन रखती थी, उसी प्रकार आधुनिक लोकतान्त्रिक-व्यवस्था में **भारतीय संविधान** सर्वोच्च है। प्रधानमन्त्री, मुख्यमन्त्री, न्यायाधीश या राष्ट्रपति – सभी संविधान के अधीन हैं। यही 'दण्डनीति' का आधुनिक, संवैधानिक स्वरूप है, जो नियम-आधारित शासन (Rule of Law) को सुनिश्चित करता है।

२. कल्याणकारी राज्य एवं योगक्षेम (Welfare State & Yogakshema)कामन्दक ने राजा का प्रथम कर्तव्य 'प्रजा का योगक्षेम' (समृद्धि एवं सुरक्षा) बताया है। यही आज **सतत् विकास लक्ष्यों (SDGs)** – विशेषतः गरीबी-उन्मूलन, अच्छा-स्वास्थ्य, गुणवत्तापूर्ण-शिक्षा एवं जलवायु-कार्य – के मूल में निहित है। इसके अतिरिक्त, प्रधानमन्त्री गरीब कल्याण अन्न योजना (PMGKAY), आवास-योजनाएँ एवं मुफ्त राशन जैसी नीतियाँ 'योगक्षेम' की आधुनिक अभिव्यक्तियाँ हैं, जहाँ राज्य प्रत्येक नागरिक की बुनियादी-आवश्यकता की पूर्ति का दायित्व स्वीकार करता है।

३. स्वतन्त्र न्यायपालिका एवं समानुपातिक दण्ड (Independent Judiciary & Proportionate Sentencing)'युक्त-दण्ड' (संतुलित दण्ड) की प्राचीन अवधारणा ही आधुनिक दण्ड-शास्त्र (Penology) का **'समानुपातिक दण्ड-सिद्धान्त' (Principle of Proportionate Sentencing)** है। भारतीय न्याय-संहिता

(BNS) एवं उच्चतम-न्यायालय की अनेक भू-महत्वपूर्ण व्याख्याएँ इसी सिद्धान्त पर आधारित हैं कि दण्ड अपराध की गम्भीरता, आशय (intent) एवं परिस्थितियों के अनुरूप होना चाहिए – न अत्यन्त कठोर (जो आतंक उत्पन्न करे) और न अत्यन्त कोमल (जो अपराध को बढ़ावा दे)। स्वतन्त्र न्यायपालिका ही इस 'युक्त-दण्ड' की संरक्षिका है।

४. राष्ट्रीय शिक्षा नीति २०२० में बहुविषयकता (Multidisciplinarity in NEP 2020)आचार्य कामन्दक द्वारा वर्णित **चार विद्याएँ** (तर्क-दर्शन, वैदिक-नीति, अर्थ-शास्त्र, एवं दण्ड-शासन) आधुनिक उच्च-शिक्षा के **दर्शन (Philosophy)** , **राजनीति-शास्त्र (Political Science)** , **अर्थशास्त्र (Economics)** एवं **विधि (Law)** जैसे विषयों के रूप में विकसित हुई हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति २०२० (NEP 2020) का **बहुविषयक (multidisciplinary) एवं अन्तःविषयक (interdisciplinary)** दृष्टिकोण इसी प्राचीन ज्ञान-वर्गीकरण का विस्तारित एवं आधुनिकीकृत स्वरूप है – जहाँ विद्यार्थी को किसी एक ही साँचे में बाँधने के स्थान पर उसे सभी विद्याओं का समग्र बोध कराया जाता है।

५. नैतिक नेतृत्व (Ethical Leadership)आदर्श राजा के लिए कामन्दक ने **आत्म-संयम (Indriya-nigrah)** , **विद्या-ज्ञान (Vidya)** , **विनम्रता (Vinaya)** एवं **प्रजा-रक्षा (Praja-raksha)** – जो गुण आवश्यक बताए हैं, वे आज **सार्वजनिक-जीवन, कॉर्पोरेट-प्रशासन, एवं राजनीतिक-नेतृत्व** के लिए आधार-स्तम्भ हैं। वर्तमान में 'गुड-गवर्नेंस' एवं 'ट्रान्सफॉर्मेशनल-लीडरशिप' की जितनी चर्चा होती है, उसका सार – निस्वार्थता, दूरदर्शिता, एवं सहानुभूति – इसी प्राचीन श्लोक-परम्परा में निहित है। यही कारण है कि भारतीय प्रशासनिक सेवा (IAS) एवं अन्य सेवाओं के प्रशिक्षण-पाठ्यक्रमों में नीतिशास्त्र (Ethics) को एक अलग विषय के रूप में सम्मिलित किया गया है।

सारांश

कामन्दकीय नीतिसार का द्वितीय सर्ग केवल एक प्राचीन-ग्रन्थ नहीं, वरन् **शाश्वत शासन-शास्त्र** है। इसके सिद्धान्त – विद्या-चतुष्टय, दण्ड-संतुलन, वर्णाश्रम-कर्तव्य, एवं योगक्षेम – आज भी उतने ही जीवन्त एवं व्यावहारिक हैं। जब तक मानव-समाज राज्य-व्यवस्था में बँधा रहेगा, तब तक कामन्दक का यह दार्शनिक-एवं-व्यावहारिक-संश्लेषण **सुशासन, नैतिक-नेतृत्व, एवं संवैधानिक-लोकतन्त्र** का पथ-प्रदर्शक बना रहेगा।

मुख्य सीख (Key Takeaways) – अर्थशास्त्र के आधारभूत सिद्धान्त

नीचे दी गई सार-सूची में कौटिल्य के अर्थशास्त्र के उन आठ मूलभूत सिद्धान्तों को संकलित किया गया है, जिनका विवेचन उपर्युक्त श्लोकों (१, ७, १२, १८, २५-२६, ३७ एवं ४२) में किया गया है। ये सिद्धान्त न केवल प्राचीन शासन-व्यवस्था के लिए अपितु आधुनिक प्रशासन, न्याय एवं समाज-निर्माण के लिए भी सदैव प्रासंगिक हैं।

१. शासन चार विद्याओं – तर्क, नीति, अर्थ एवं दण्ड – पर टिका है- शासन-व्यवस्था की स्थिरता के लिए आन्वीक्षिकी (तर्क-दर्शन), त्रयी (वैदिक नीति), वार्ता (अर्थ-व्यवस्था) और दण्डनीति (शासन-विज्ञान) – इन चारों का समन्वय आवश्यक है। एक-आयामी दृष्टि से शासन सफल नहीं हो सकता; इन चारों के समुचित ज्ञान एवं क्रियान्वयन से ही सुशासन संभव है। (श्लोक १)

२. दण्डनीति (Rule of Law) के बिना सभी विद्याएँ व्यर्थ हैं - तर्क, नीति और अर्थ-ज्ञान तभी सार्थक हैं, जब उन्हें लागू करने के लिए एक प्रभावी दण्ड-व्यवस्था हो। क्योंकि मानव-स्वभाव स्वार्थी एवं विषय-लोलुप है, अतः दण्ड का भय ही उसे सनातन-मार्ग पर स्थिर रखता है। विधि का शासन (Rule of Law) ही सभी ज्ञान-विधाओं का परम रक्षक है। (श्लोक ४२)

३. वर्ण-व्यवस्था गुण-एवं-कर्म-आधारित है, जन्मगत नहीं - वर्ण-विभाजन व्यक्ति के जन्म पर नहीं, वरन् उसके गुण (स्वभाव/क्षमता) और कर्म (व्यवसाय/योगदान) के आधार पर है। यह एक गतिशील एवं कार्यात्मक समाज-संरचना है, जिसका उद्देश्य सामाजिक दक्षता एवं कर्तव्य-निष्ठा को बढ़ावा देना है, न कि जन्मगत विभेद को स्थापित करना।

४. चार आश्रम – ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यास – जीवन-यात्रा के पड़ाव हैं - जीवन के चार आश्रम व्यक्ति के सर्वांगीण विकास की योजना हैं – विद्यार्जन (ब्रह्मचर्य), संसार-निर्वाह एवं कर्तव्य-पालन (गृहस्थ), सामाजिक-कार्यों से विरति एवं चिन्तन (वानप्रस्थ), तथा मोक्ष-प्राप्ति हेतु समर्पण (संन्यास)। गृहस्थाश्रम इन सबका केन्द्र-बिन्दु है, जो शेष तीनों का पोषण करता है। (श्लोक २५-२६)

५. सार्वभौमिक-धर्म – अहिंसा, सत्य, दया एवं क्षमा – सभी के लिए समान हैं - यद्यपि वर्ण और आश्रम-भेद के अनुसार कर्तव्य भिन्न हैं, तथापि अहिंसा, सत्य, दया और क्षमा – ये सार्वभौमिक नैतिक सिद्धान्त – प्रत्येक मनुष्य पर समान रूप से लागू होते हैं। ये ही मानव-धर्म की आधारशिला हैं, जिनके बिना कोई समाज टिकाऊ नहीं हो सकता। (प्रकरण-परिचय)

६. मात्स्य-न्याय (अराजकता) से बचने हेतु सुदण्ड-शासन अनिवार्य है - जहाँ दण्ड-व्यवस्था निर्बल होती है, वहाँ 'मात्स्य-न्याय' (बड़ी मछली द्वारा छोटी मछली को निगल जाने का क्रम) उत्पन्न होता है। दुर्बल का बलवान द्वारा शोषण रोकने का एकमात्र उपाय एक सशक्त, निष्पक्ष एवं भय-रहित दण्ड-प्रणाली है, जो सबको समान रूप से नियन्त्रित करे।

७. सच्ची विद्या चतुर्वर्ग – धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष – को साधती है - विद्या (ज्ञान) का उद्देश्य केवल भौतिक सफलता नहीं, वरन् चारों पुरुषार्थों – धर्म (नैतिक कर्तव्य), अर्थ (आर्थिक समृद्धि), काम (स्वस्थ अभिरुचि) और मोक्ष (आध्यात्मिक मुक्ति) – की सम्यक् सिद्धि है। इहलोक और परलोक – दोनों की प्राप्ति ही विद्या की कसौटी है। (श्लोक ७ एवं १२)
८. युक्त-दण्ड (संतुलित) ही न्याय है – न अति-कठोर, न अति-कोमल - दण्ड की कठोरता अपराध की गम्भीरता, परिस्थितियों एवं अपराधी की अवस्था के अनुसार समानुपातिक (proportionate) होनी चाहिए। अति-कठोर दण्ड से आतंक एवं विद्रोह पनपता है, जबकि अति-कोमल दण्ड से अनुशासनहीनता एवं अपराध-वृद्धि होती है। 'युक्त-दण्ड' ही सच्चे न्याय की कसौटी है। (श्लोक ३७)

निष्कर्ष

कामन्दक का यह बहुआयामी दर्शन हमें बताता है कि **सुशासन, न्याय और सामाजिक-व्यवस्था** एक-दूसरे के पूरक हैं। व्यक्ति को अपने कर्तव्यों और आत्म-विकास का बोध होना चाहिए, तो वहीं राज्य-व्यवस्था को दण्डनीति, अर्थ-व्यवस्था एवं नैतिक-आधार के समन्वय से एक सन्तुलित ढाँचा प्रदान करना चाहिए। ये आठ सूत्र आज भी प्रशासकों, न्यायाधीशों एवं नीति-निर्माताओं के लिए **एक दृष्टि-पत्र (Vision Document)** के समान हैं।

सन्दर्भ-सूची (ग्रन्थ एवं अध्ययन-सामग्री)

1. **कामन्दकीय नीतिसार** (मूल) – चौखंबा सुरभारती, वाराणसी (निर्णयसागर मुद्रणानुसार)।
2. **The Kautiliya Arthashastra** – R.P. Kangle (1965)।
3. **मनुस्मृति** – Gita Press।
4. **महाभारत** (शान्ति पर्व) – Gita Press।
5. **V.P. Varma** – Ancient Indian Political Thought (1959)।
6. **K.P. Jayaswal** – Hindu Polity (1978)।
7. **Dr. Shama Shastri** – Kamandakiya Nitisara (Translation)।
8. **Upinder Singh** – Politics, Violence and War (2010)।
9. **Stanford Encyclopedia of Philosophy** – Ancient Indian Political Thought।
10. **JSTOR** – Kamandakiya Nitisara Studies।
11. **IGNCA** – Indira Gandhi National Centre for the Arts।
12. **Sanskrit Documents Archive**।
13. **Internet Archive** – Kamandakiya Nitisara।

समापन-सूक्तियाँ

"विद्यया विनयो यस्य, विनयेन दमः सह – स राजा राज्यं सुखी भवेत्"

(जिसके पास विद्या के साथ विनय हो, और विनय के साथ आत्म-संयम हो – वही राजा सुखी राज्य का स्वामी बनता है।)

अगला कदम

सर्ग ३: राजपुत्र-शिक्षा – राजकुमारों की शिक्षा-दीक्षा, प्रशिक्षण एवं योग्यता-निर्धारण पर आधारित अगली कड़ी पढ़ें।

ब्लॉग को फॉलो करें

भारतीय दर्शन, नीतिशास्त्र एवं शासन-कला की आगामी विवेचनाओं एवं श्लोक-व्याख्याओं के लिए हमारे ब्लॉग को अवश्य फॉलो करें।

"न दण्डेन विना राष्ट्रं, न राष्ट्रं विना दण्डः।"

(बिना दण्ड के राष्ट्र नहीं चल सकता, और बिना राष्ट्र के दण्ड का कोई अस्तित्व नहीं।)
– यही -कामन्दकीय नीति का सार-सन्देश है।